एम.ए हिन्दी प्रथम सत्र

हिन्दी साहित्य का इतिहास (आदिकाल से रीतिकाल तक)

एम.ए हिन्दी

CDOE-HIN-101-CC-5110

RAJIV GANDHI UNIVERSITY
ARUNACHAL PRADESH, INDIA-791112

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

हिन्दी साहित्य का इतिहास (आदिकाल से रीतिकाल तक)

Syllabi **Book in Mapping**

इकाई : 1

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 साहित्य का इतिहास दर्शन

1.3 इतिहास लेखन की पद्धतियां

1.3.1 वर्णानुक्रम पद्धति

1.3.2 कालानुक्रम पद्धति

1.3.3 वैज्ञानिक पद्धति

1.3.4 विधेयवादी पद्धति

1.4 साहित्य इतिहास लेखन की समस्याएं

1.5 हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा

1.5.1 आचार्य शुक्ल पूर्व इतिहास लेखन की परंपरा

1.5.2 आचार्य शुक्ल के इतिहास लेखन में योगदान

1.5.3 शुक्लोत्तर इतिहास लेखन की परंपरा

1.6 हिंदी साहित्य का इतिहास

1.6.1 काल विभाजन एवं सीमा निर्धारण

1.6.3 नामकरण

1.7 बोध प्रश्न

1.8 उपयोगी पुस्तकें

इकाई : 2

इकाई की रूप-रेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावन

2.2 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि

2.3 परिस्थितियाँ

2.3.1 सामजिकपरिस्थितियाँ

2.3.2 राजनैतिकपरिस्थितियाँ

2.3.3 धार्मिकपरिस्थितियाँ

2.3.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ

2.4 आदिकालीनसाहित्य

2.4.1 रासोसाहित्य

2.4.1.1 नृत्यगीतपरकरासोकाव्य
2.4.1.2 छंद-वैविध्यपरकरासोकाव्य
2.4.2 नाथ साहित्य
2.4.3 जैन साहित्य
2.4.4 सिद्धसाहित्य
2.4.5 अमीरखुसरो
2.5 आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ
2.6 सारांश
2.7 बोधप्रश्न
2.8 उपयोगीपुस्तकें

इकाई- 3

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय
3.1 इकाई का उद्देश्य
3.2 भक्ति आंदोलन: उद्भव और विकास
3.3 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियाँ
3.4 भक्ति का अखिल भारतीय स्वरूप और उसका अन्तः प्रादेशिक वैशिष्ट्य
3.5 भक्ति साहित्य की विभिन्न धाराएं
3.5.1 संत काव्य
3.5.1.1 सन्त साहित्य की विशेषताएँ
3.5.1.2 कबीर
3.5.1.3 रचनाएँ
3.5.2 सूफी काव्य
3.5.2.1 जायसी 'पद्मावत'
3.5.2.2 सूफी प्रेमाख्यानक काव्य की विशेषताएँ
3.5.3 कृष्ण काव्य
3.5.3.1 कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय
3.5.3.2 कृष्णभक्ति काव्य की विशेषताएँ
3.5.3.3 सूरदास
3.5.4 राम काव्य
3.5.4.1 तुलसीदास
3.5.4.2 रामभक्ति काव्य की विशेषताएं
3.6 भक्तिकाव्य की प्रवृत्तियां
3.6.1 ईश्वर के उत्कट प्रेम एवं अनन्य निष्ठा
3.6.2 अहं का विगलन
3.6.3 सांसारिक विषय वासनाओं के प्रति उदासीनता

3.6.4 गुरु महिमा
3.6.5 नाम स्मरण का महत्त्व
3.6.6 संतो के प्रति श्रद्धा एवं सत्संग पर बल
3.6.7 मानवतावादी दृष्टि
3.6.8 लोकोन्मुखता
3.7 प्रमुख रचनाएं और रचनाकार
3.7.1 संत काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार
3.7.2 सूफी काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार
3.7.3 कृष्ण काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार
3.7.4 राम काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार
3.8 भक्तिकालीन साहित्य और लोक जागरण
3.9 भक्तिकालीन कवियों की भाषा दृष्टि एवं काव्य भाषा
3.10 सारांश
3.11 शब्दावली
3.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

इकाई-4

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियाँ
4.3.1 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
4.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ
4.3.3 राजनीतिक परिस्थितियाँ
4.3.4 कलावादी स्थितियाँ
4.4 रीति की अवधारणा और रीतिकाव्य
4.5 रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएँ : सामान्य परिचय
4.6 रीतिकाल की रचनाएँ और रचनाकार
4.7 रीतिकालीन प्रवृत्तियां
4.7.1 रीति-निरूपण
4.7.2 श्रृंगारिकता
4.7.3 प्रशस्तिगान एवं वीरता
4.7.4 भक्ति-भावना
4.7.5 नीतिपरकता
4.7.6 प्रकृति-चित्रण
4.7.7 अनुवाद की प्रवृत्ति
4.7.8 भाषागत वैशिष्ट्य

4.8 रीतिकालीन काव्य भाषा और अभिव्यंजना शिल्प
4.9 सारांश
4.10 कठिन शब्द
4.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.13 अभ्यास प्रश्न

(CDOE-HIN-101-CC-5110)

हिन्दी साहित्य का इतिहास (आदिकाल से रीतिकाल तक)

इकाई : 1

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 साहित्य का इतिहास दर्शन
1.3 इतिहास लेखन की पद्धतियां
1.3.1 वर्णानुक्रम पद्धति
1.3.2 कालानुक्रम पद्धति
1.3.3 वैज्ञानिक पद्धति
1.3.4 विधेयवादी पद्धति
1.4 साहित्य इतिहास लेखन की समस्याएं
1.5 हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा
1.5.1 आचार्य शुक्ल पूर्व इतिहास लेखन की परंपरा
1.5.2 आचार्य शुक्ल के इतिहास लेखन में योगदान
1.5.3 शुक्लोत्तर इतिहास लेखन की परंपरा
1.6 हिंदी साहित्य का इतिहास
1.6.1 काल विभाजन एवं सीमा निर्धारण
1.6.3 नामकरण
1.7 बोध प्रश्न
1.8 उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में साहित्य का इतिहास दर्शन और इतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियों एवं लेखन से संबंधित समस्याओं को सविस्तार से चर्चा की गई है साथ ही साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा उनका काल विभाजन, सीमा निर्धारण एवं नामकरण पर भी प्रकाश डाला गया है।

- साहित्येतिहास लेखन के विभिन्न दृष्टियों से परिचित हो सकेंगे।
- साहित्येतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियों से परिचित हो सकेंगे।

- हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- साहित्येतिहास लेखन की समस्याओं से अवगत हो सकेंगे।
- हिन्दी साहित्य के काल विभाजन एवं नामकरण को समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अनेक घटनाएं घटित होती हैं। इन्हीं घटनाओं का भविष्य में इतिहास बनता है; और यही इतिहास मनुष्य को अतीत से जोड़कर रखती हैं। इतिहास शब्द इति+ह+आस से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ - *'ऐसा ही हुआ'* है। इतिहास का संबंध अतीत की घटनाओं से होता है; जिसमें घटनाएं वास्तविक रूप में घटित हुई होती हैं. भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इतिहास के व्यापक स्वरूप की विवेचना की है। कुछ विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएं निम्नलिखित हैं -

चार्ल्स फर्थ के अनुसार - "इतिहास मानवीय सामाजिक जीवन का वर्णन है इसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले उन सक्रिय विचारों का अन्वेषण है जो समाज के विकास में बाधक अथवा सहायक से दोहे हैं इन सभी तत्वों का उल्लेख इतिहास में होना चाहिए। "

जी०आर० एल्टन के अनुसार - "इतिहास की परिभाषा अतीत तथा वर्तमान के बीच सेतु के रूप में करते हैं।"

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार - " अतीत के किसी भी तथ्य, तत्व एवं प्रवृति के वर्णन, विवरण, विवेचन व विश्लेषण को, जो कि काल विशेष या कालक्रम की दृष्टि से किया गया हो, इतिहास कहा जा सकता है।"

गणपतिचंद्र गुप्त के अनुसार - "अतीत के किसी भी तथ्य तत्व या प्रवृति के वर्णन विवरण विवेचन विश्लेषण को जो कि काल विशेश्या कार्यक्रम की दृष्टि से किया गया हो इतिहास कहलाता है।"

कालिंगवुड के अनुसार - "इतिहास धर्मशास्त्र या भूत विज्ञान की तरह एक चिंतन पद्धति है। यह एक प्रकार का शोध है, खोज है, अन्वेषण है।"

साहित्य का इतिहास अतीत के यथार्थ स्वरूप का दस्तावेज होता है। जो प्रत्येक युग में अपनी प्रवृति के अनुसार लिखा जाता रहा है। इतिहास की जानकारी के बिना साहित्य के क्रमिक विकास को समझा नहीं जा सकता है। इतिहासकार अतीत की घटनाओं को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में लिखता है और भविष्य के मार्ग को प्रशस्त करता है। अतः साहित्य के सम्यक मूल्यांकन में इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इतिहास साहित्य की विभिन्न धाराओं, परंपराओं एवं प्रवृत्तियों का सम्यक विवेचन करता है। साहित्य का इतिहास युगीन संदर्भों को उद्घाटित कर वर्तमान में चल रहे साहित्यिक दृष्टिकोण के साथ तुलनात्मक अध्ययन करता है। जिससे साहित्य में हुए परिवर्तन का कारण स्पष्ट हो सके। आगे हम हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा, समस्याओं, नामकरण एवं सीमा निर्धारण पर विचार करेंगे।

1.2 साहित्य का इतिहास दर्शन

प्रत्येक देश की अपनी धार्मिक एवं दान दार्शनिक परंपराएं होती हैं जिनसे उस देश के अधिकांश लोगों की भावनाएं जुड़ी होती हैं उन्हें भावनाओं के प्रतिक्रिया स्वरुप घटनाओं का प्रादुर्भाव होता है आगे चलकर वहीं घटना इतिहास कहलाती हैं इतिहास का संबंध राजनीतिक एवं सांस्कृतिक तक सीमित नहीं है उसका विस्तृत फलक होता है तब साहित्य के इतिहास का महत्वपूर्ण अंग होता है जिसमें विभिन्न मानवीय क्रियाकलापों प्राकृतिक घटनाओं एवं युगीन संदर्भों का साहित्यिक अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से करते हैं साहित्य का इतिहास दर्शन शोक चिंतन को प्रोत्साहित करता है उसकी आचार विचार को प्रभावित करता है साहित्य चिंतन मनन में दर्शन से प्रभावित होता है ग्रीक दार्शनिक प्लेटो का काव्य चिंतन उसके दर्शन का ही प्रभाव है तत्पश्चात अरस्तु लोंजाइनस से लेकर रोमांटिक युग में रूसो कांड मेल प्रवृत्ति दार्शनिकों का साहित्य पर विशेष प्रभाव रहा है इसी क्रम में भारतीय साहित्य शास्त्र भी भारतीय दर्शन पर आधारित है भारत के 10 सूत्र की व्याख्या परवर्ती आचार्य द्वारा प्रस्तुत तर्क एवं स्थापना है उनके दार्शनिक विचारों से ही प्रभावित हैं- "भारतवर्ष के दार्शनिक, साहित्य के आलोचकों को आश्चर्य हुआ कि इस देश में उस चीज का कभी विकास नहीं हो पाया जिसे फिलासफी 'कहते हैं। भारतवर्ष के दर्शन - धर्म पर आधारित बनाए गए हैं। - हजारी प्रसाद द्विवेदी

सामान्यतः इतिहास शब्द से राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास का ही बोध होता है किंतु वास्तविकता यह है कि सृष्टि की कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जिसका इतिहास से संबंध ना हो। अतः साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से करते हैं। समयानुसार परिवर्तनों के साथ साथ साहित्य के इतिहास में भी विस्तार हुआ। जिससे साहित्य इतिहास के दृष्टिकोण में भी सूक्ष्मता एवं गंभीरता आ गई। फिर भी साहित्य का इतिहास दर्शन इतना विकसित रूप में सामने नहीं आ सका। साहित्य एवं दर्शन एक दूसरे से आबद्ध है, एक दूसरे के पूरक है।

बोध प्रश्न :

1.साहित्य की इतिहास दृष्टि की विवेचना करें।

2. साहित्य, इतिहास से किस प्रकार प्रभावित है? समीक्षा कीजिये।

1.3 इतिहास लेखन की पद्धतियाँ

यद्यपि 19 वीं शताब्दी से पूर्व विभिन्न कवियों एवं रचनाकारों द्वारा हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों के जीवन चरित्र पर अनेक ग्रंथों की रचना हो चुकी थी। जिसमें उनके जीवनवृत्त से लेकर रचनाओं का संक्षिप्त व्रत संग्रह प्राप्त होता है। ऐसे में जीवनवृत्त प्रायः पद्यों में लिखे जाते थे। जिसमें नाभादास कृत 'भक्तमाल', कालिदास त्रिवेदी कृत 'कालिदासहजारा', गोकुलनाथ एवं गोपीनाथ कृत 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' तथा 'दो सौ

बावन वैष्णव की वार्ता' आदि उल्लेखित है। किंतु उनमें कालक्रम, युगीन प्रवृत्तियां, भाषा, शैली आदि का नितांत अभाव था। अतः उन्हें व्रत-संग्रह के अतिरिक्त इतिहास की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। साहित्य में इतिहास लेखन का सबसे पहला प्रयास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी को माना जाता है। हिंदी साहित्य में इतिहास लेखन की प्रमुख पद्धतियां प्रचलित रही हैं; जिनका विवरण निम्नलिखित है -

1.3.1 वर्णानुक्रम पद्धति:

साहित्य में इतिहास लेखन की शुरुआत वर्णानुक्रम पद्धति से हुई। इतिहास लेखन की इस पद्धति में कवियों और लेखकों का परिचय उनके नाम-वर्ण के अनुसार किया जाता है। यह पद्धति वर्णमाला के अनुक्रम में होने से इसे 'वर्णमाला पद्धति' भी कहते हैं। उदाहरण स्वरुप में यदि कण्हपा, कबीर, केशवदास, कुंवर नारायण को लें। चाहे कालक्रम की दृष्टि से अलग-अलग युग के कवि हों, परंतु इनका विवेचन एक साथ करना होगा; क्योंकि इन चारों कवियों के नाम 'क' वर्ण से शुरू होते हैं वर्णानुक्रम पद्धति का प्रयोग गार्सा द तासी व शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास ग्रंथ को लिखने में प्रयोग किया है। यह पद्धति कालक्रम की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त है। यह प्रणाली इतिहास ना होकर कोष प्रणाली मानी जाती है।

1.3.2 कालानुक्रम पद्धति:

इतिहास ग्रंथ को युगीन प्रवृत्तियों के आधार पर काल खंडों में विभाजित किया गया है। अतः कवियों व लेखकों का विवेचन कालानुक्रम पद्धति के द्वारा किया जाता है। इस पद्धति में कवियों व लेखकों के जन्म को आधार बनाकर साहित्य के इतिहास में उनका विवेचन किया जाता है। इस पद्धति का सर्वप्रथम प्रयोक्ता जॉर्ज ग्रियर्सन है। जिन्होंने 'द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' को बारह भागों में विभाजित कर कवियों और लेखकों का विवेचन काल अनुक्रम के आधार पर किया है। इसके पश्चात मिश्र बंधुओं ने मिश्रबंधु विनोद जैसे इतिहास ग्रंथ की रचना इसी पद्धति के द्वारा की। इस पद्धति के आधार पर लिखे गए ग्रंथों को साहित्येतिहास की अपेक्षा कविवृत्तसंग्रह कहना अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि साहित्येतिहास में केवल लेखकों के जीवन परिचय और उनकी रचनाओं तक सीमित नहीं होता; बल्कि उसमें युगीन प्रवृत्तियों और परिस्थितियों का भी विश्लेषण होता है। जिसकी उपेक्षा नहीं कि जा सकती है। *"जब तक कवियों की सूची तैयार ना हो तब तक साहित्य का इतिहास नहीं लिखा जा सकता है।"* - नलिन विलोचन शर्मा

1.3.3 वैज्ञानिक पद्धति:

इतिहासकार वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा प्रत्येक वस्तु में विकास की अनिवार्य गति देखता है। यह पद्धति कार्ल मार्क्स के 'द्वंदात्मक भौतिकवाद' पर आधारित है। मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि जहां एक और समाज और साहित्य के संगम संबंधों की व्याख्या करता है; वहीं दूसरी ओर इतिहास से भी साहित्य के संबंध को

अर्थपूर्ण व्याख्या प्रदान करता है। इस पद्धति में इतिहासकार निर्वैयक्तिक होकर तथ्यों का संकलन करता है; तथापि क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित कर उसका विश्लेषण करता है। इसी पद्धति का आधार बनाकर डॉ. गणपति चंद्र गुप्त ने 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' लिखा।

1.3.4 विधेयवादी पद्धति :

विधेयवाद का तात्पर्य - संदेह के परे से होता है; अर्थात किसी भी विवाद के परे जो ज्ञान है वही विधेयवाद है। विधेयवाद रोमांटिसिज्म के विरोध में आया। यह व्यक्तिवाद को केंद्र में रखता है। जो समाज और साहित्य के **संबंध को अनिवार्य कार्य-** कारण संबंध के रूप में देखता है। इस पद्धति में साहित्य इतिहास प्रवृत्तियों का अध्ययन युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में किया जाता है। अतः साहित्य इतिहास लेखन में यह पद्धति सर्वाधिक उपयुक्त सिद्धि हुई है। इस विधि के जन्मदाता 'तेन' माने जाते हैं। इन्होंने इस इतिहास दृष्टि के लिए जाति, वातावरण और क्षण विशेष को महत्वपूर्ण माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास लेखन में इसी पद्धति का उपयोग किया है। अतः आचार्य शुक्ल जी के इतिहास ग्रंथ को सच्चे अर्थों में हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रंथ माना जाता है। *"प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है। तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य का परिवर्तन साहित्य इतिहास कहलाता है।"*- आचार्य रामचंद्र शुक्ल

बोध प्रश्न :

1. साहित्येतिहास लेखन की प्रचलित पद्धतियां कौन सी हैं ?
2. गार्सा द तासी एवं शिवसिंह सेंगर द्वारा इतिहास लेखन में प्रयुक्त पद्धति पर प्रकाश डालें।
3. वर्णानुक्रम एवं कालानुक्रम पद्धतियों में अंतर स्पष्ट करें।
4. विधेयवादी पद्धति से आप क्या समझते हैं ? आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि की विवेचना करें।

1.4 साहित्य इतिहास लेखन की समस्याएं :

इतिहास में घटनाएं घटित हो चुकी होती हैं। जिनका वर्तमान में संकलित कर भविष्य के साथ मूल्यांकन किया जाता है। इतिहास के क्षेत्र में मौलिकता प्रमुख बिंदु है। परिकल्पना अर्थात विकास परंपरा का परिवर्तन वास्तव में इतिहास लेखन ऐतिहासिक अनुसंधान का पर्याय नहीं है। ऐतिहासिक अनुसंधान में नवीन तथ्यों के अन्वेषण और उपलब्ध तथ्यों के नवीन आख्यान पर बल देता है। वही इतिहासकार साक्ष्यों एवं तथ्यों को संकलित करने का कार्य करता है। अतः इतिहासकार के लिए नवीन की अपेक्षा प्रामाणिक और समय दोनों का अधिक महत्व है। इसी क्रम में लेखकों एवं उनकी रचनाओं की समीक्षा एवं मूल्यांकन में उसका अपना मौलिक दृष्टिकोण होता है; जो आलोचना के क्षेत्र में नितांत आवश्यक होता है, किंतु इतिहास में अतीत की

घटनाओं को भविष्य के साथ जोड़कर नहीं कर सकते; इससे इतिहास का संतुलन भंग हो सकता है। इतिहास में सामंजस्यवादी दृष्टिकोण और संतुलित विवेचन ही अधिक प्रयोजनीय है। इतिहास लेखन की प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं -

1. विक्रम संवत तथा अन्य संवत से आज के पाठक का संपर्क न होने के कारण ईसवी सन का संवत के साथ प्रयोग करना आवश्यक होना चाहिए।
2. जीवन वृत्त तथा ग्रंथ का विवरण साहित्यिक विवेचन करते समय पहले देना अधिक तर्कसंगत है। जिससे उससे संबंधित तथ्यों का ज्ञान शीघ्र हो सके।
3. विषय प्रतिपादन में सामंजस्य वादी पद्धति का अनुसरण करना संगत है किंतु प्राकृतिक विश्लेषण तथा कवि एवं उनके कृतियों के योगदान का भी साहित्य के इतिहास में उतना ही विशेष स्थान रखता है।
4. शैली गत भिन्नता होने पर ऐतिहासिक तथ्यों पर संदेह है स्पष्ट हो जाता है। जिसका प्रभाव प्रवृत्ति इतिहासकारों पर अधिक पड़ता है एवं उनका मूल्यांकन ही प्रभावित होता है।
5. हिंदी साहित्य की प्रमुख समस्या उसके समय निर्धारण से है अर्थात प्रारंभिक अवस्था को कब से कब तक माना जाए एवं उसका क्या आधार प्रस्तुत किया जाए। शिवसिंह सेंगर, जॉर्ज ग्रियर्सन और मिश्र बंधुओं ने हिंदी साहित्य का प्रारंभ सातवीं सदी से स्वीकार किया है; जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसका आरंभ दसवीं शताब्दी से माना है। कुछ विद्वान बारहवीं वीं सदी से भी हिंदी का आरंभ मानते हैं। अंततः यह समस्या वर्तमान में भी बनी हुई है। संभवतः विद्वानों में मतैक्य का अभाव होने के कारण ऐसा संभव नहीं हो पाया है।
6. प्रथम कवि के संदर्भ में किसको स्थान देना है किसको नहीं यह अलग-अलग विद्वानों ने अपने साहित्य कृष्ट पूर्ण के आधार पर तय कर लिया है। राहुल सांकृत्यायन ने सरहपा को, रामकुमार वर्मा ने स्वयंभू को, शिवसिंह सेंगर ने पुष्य कवि को एवं गणपतिचंद्र गुप्त ने शालिभद्रसूरि को प्रथम कवि के रूप में स्वीकार किया है।
7. हिंदी साहित्य को आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल में विभाजित किया गया है। आचार्य शुक्ल ने इसी पद्धति का प्रयोग किया किंतु बाद में यह काल विभाजन भी विद्वानों के संदेहों के घेरे में आ गया। इतिहास लेखन के लिए काल विभाजन जितना महत्वपूर्ण है उतना ही समस्या से पूर्ण भी है।
8. हिंदी साहित्य इतिहास में अन्य भाषाओं के साहित्य को स्थान देना चाहिए या नहीं यह भी एक गंभीर समस्या बनी हुई है। हिंदी साहित्य के कुछ विद्वानों का मत है कि उर्दू को भी हिंदी साहित्य में समाहित किया जाना चाहिए। इस पर डॉ नगेंद्र ने हिंदी साहित्य के इतिहास में उर्दू का समावेश एक प्रयास होगा, कहा है। जहां पर मैथिली और राजस्थानी साहित्य का इतिहास आदिकाल से हिंदी साहित्य के साथ संबंध रहा है और विद्यापति, चंद्रवरदाई, आज कवियों को हिंदी साहित्य के इतिहास में निरंतर

महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। परंतु भाषा की जटिलता के कारण इन भाषाओं के कवियों तथा उनकी कृतियों के साथ सामंजस्य नहीं हो पाया।

बोध प्रश्न :

1. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्या पर प्रकाश डालिए।
2. आदिकाल की साहित्यिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को सुनिश्चित कीजिए।

1.5 हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा :

कवियों और लेखकों के द्वारा समय-समय पर साहित्य रचा गया। जिन्हें इतिहासकार द्वारा क्रमानुसार विश्लेषण कर मूल्यांकन करने का कार्य किया गया। यद्यपि 19वीं शताब्दी से पूर्व अनेक ऐसे ग्रंथों की रचना हो चुकी थी; जिनमें हिंदी के विभिन्न कवियों एवं उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय छंदबद्ध रूप में प्राप्त होता है। जिनमें 'भक्तमाल', 'चौरासी वैष्णव की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता', 'कालिदास हजारा', 'कविमाला' आदि प्रमुख हैं। इन सभी ग्रंथों में कवियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त होता है; किंतु इनमें कालक्रम का अभाव एवं संक्षिप्त परिचय होने से इतिहास की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। वस्तुतः हिंदी साहित्य इतिहास लेखन की परंपरा का सूत्रपात फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने किया। जिन्होंने फ्रेंच भाषा में 'इस्तवार द लितेरेत्युर एन्दुई एन्दुस्तानी' ग्रंथ लिखा। तत्पश्चात तो हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने की परंपरा से चल पड़ी। आचार्य शुक्ल तक आते-आते यह परंपरा और अधिक सुदृढ़ एवं स्वस्थ हो चुकी थी।

1.5.1 आचार्य शुक्ल पूर्व इतिहास लेखन की परंपरा :

आचार्य शुक्ल पूर्व साहित्य इतिहास का स्वरूप कविवृत्तसंग्रह के रूप में प्राप्त होता है। जो अनौपचारिक रूप में लिखे गए हैं। जिसमें कवियों के जीवन वृत्त संग्रह की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इन ग्रंथों में इतिहास बोध का अभाव मिलता है। इतिहास के नाम पर इनमें कवियों के नाम व परिचय दिए गए हैं। इस समय के प्रमुख ग्रंथों का परिचय निम्नलिखित है –

अनौपचारिक इतिहास लेखन

भक्तमाल :

नाभादास द्वारा रचित भक्तमाल प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसका प्रयणन संभवत: संवत 1642 वि० के बाद हुआ, और प्रियादास ने संवत 1769 वि० में इसकी टीका लिखी। इस ग्रंथ में 200 भक्त कवियों के जीवन चरित्र का वर्णन 316 छप्पय छंदों के द्वारा की गई है। इन भक्तों में रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, तुलसीदास, सूरदास,

शंकराचार्य, मीरा, रैदास, कबीर आदि प्रमुख हैं। यह परिचयात्मक ग्रंथ होने के साथ-साथ साहित्य एवं इतिहास दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भक्त कवियों की जीवन कथा का वर्णन छंद बद्ध एवं अलौकिक घटनाओं के माध्यम से हुआ हैं। भक्तिकाल में यह ग्रंथ परवर्ती इतिहासकारों के लिए संजीवनी सिद्ध हुई है।

गोकुलनाथ एवं गोपी नाथ :

इन्होंने भक्तिकाल में पुष्टिमार्ग के शिष्यों के जीवनवृत्तों का संकलन करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। जिनमें महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शिष्यों का जीवनवृत्त 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' एवं विट्ठलनाथ के शिष्यों का जीवन वृत्त 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' नाम से किया है। यह वार्ता ग्रन्थ ब्रज भाषा में रचित है। चौरासी एवं दो सौ बावन वार्ता के ग्रंथों के रचयिता के संबंध में विद्वानों में मतभेद रहा। जिसका निराकरण धीरेंद्र वर्मा जी ने किया। *" गोकुलनाथजी के अष्टछाप नाम से कोई पुस्तक नहीं लिखी है। प्रस्तुत पुस्तक गोकुलनाथजी के नाम से प्रचलित चौरासी वैष्णव की वार्ता तथा दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता शीर्षक ग्रंथों से अष्टछाप कवियों की जीवनीओं का संग्रह मात्र है।"*

कालिदास हजारा

कालिदास त्रिवेदी कृत 'कालिदास हजारा' अत्यंत महत्वपूर्ण वृत्त संग्रह है। इस संग्रह में संवत 1480 से लेकर 1775 वि० तक के 212 कवियों के 1000 छंदों में संकलित है। इस ग्रन्थ का परवर्ती इतिहासकारों ने व्यापक रूप से उपयोग किया है। जिसमें शिव सिंह सेंगर ने पचासी कवियों का परिचय कालिदास सजारा से उद्धृत किया है। जिसमें वह स्वयं स्वीकार करते हैं, "*सरोज की रचना में कालिदास हजारा से बड़ी सहायता मिली है।"* उन्नीसवीं सदी से पूर्व अन्य वृत संग्रहों में यदुराय पुत्र तुलसीराम द्वारा प्रणयन 'कविमाला' एवं गुरु अर्जुन देव द्वारा 1604 ईसवी में संपादित 'आदिग्रंथ' प्रमुख है। जिसमें से 'कविमाला ग्रंथ वर्तमान में उपलब्ध नहीं है।

औपचारिक इतिहास लेखन

गार्सा द तासी

साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा का सूत्रपात फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी नहीं किया इन्होंने 1839 फ्रेंच भाषा में अपनी पुस्तक'इस्तवार द लितेरेत्युर एन्दुई एन्दुस्तानी' लिखी। इसमें कवियों उनके कालू एवं रचनाओं का व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है या पुस्तक दो भागों में विभक्त है जिसका प्रकाशन क्रमशाह 1839 श्री तथा 18 सो 45 ईस्वी में हुआ गार्सा द तासी के ग्रंथ में कुल 738 कवियों का वर्णन है जिसमें हिंदी के 72 तथा शेष उर्दू के कवि हैं यह ग्रंथ वर्णनात्मक परंपरा के होने से इसमें इतिहास कम तथा तथ्यों का संकलन

अधिक है राशि ने अपने ग्रंथ में साहित्य को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है एक संकलन ग्रंथ होने के कारण इसमें साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ संगीत इतिहास दर्शन चिकित्सा शास्त्र गणित विज्ञान संबंधी ग्रंथों की भी जानकारी दी गई है।

शिव सिंह सेंगर

हिंदी साहित्य इतिहास परंपरा में शिव सिंह सरोज महत्वपूर्ण ग्रंथ है इस ग्रंथ में एक सहस्त्र (838 कवि) भाषा कवियों का जीवन चरित्र तथा उनकी रचनाओं के उदाहरण दिए गए हैं सन 1883 ईस्वी में प्रकाशित ग्रंथ मैं भक्तमाल के कुछ कवियों का वर्णन मिलता है यह ग्रंथ वर्ण अनुक्रम पद्धति पर होने से जीवन वृत्त संग्रह अधिक इतिहास बहुत कम प्रतीत होता है।

जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन

हिंदी साहित्य इतिहास का प्रथम क्रम बद्ध व्यवस्थित इतिहास लिखने का प्रयास 1 अट्ठारह सौ 88 दिन में जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने किया एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल बंगाल के तत्वावधान में 'द मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' छपा। यह पहला ग्रंथ है जिसमें नासिर कवियों का जीवन परिचय काला अनुक्रम के अनुसार दिया गया है बल्कि काल विभाजन एवं नामकरण का अतुलनीय प्रयास किया है प्रत्येक युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों ऐतिहासिक विश्लेषण मिलता है इस ग्रंथ में 952 कवियों का परिचय प्राप्त होता है संपूर्ण ग्रंथ को 11 काल खंडों में विभाजित किया गया है।

ग्रियर्सन के भाषा संबंधी दृष्टिकोण काफी परिपक्व है उन्होंने संस्कृत भारती व प्राकृत को हिंदी से पूर्णता भी ना माना है इन्होंने भक्तिकाल को सर्वप्रथम स्वर्ण युग की संज्ञा दी जो वर्तमान में भी निर्विवाद रूप से स्वीकार्य है काल विभाजन एवं नामकरण में उन्होंने यादृच्छिकता को महत्व दिया है हिंदी साहित्य इतिहास लेखन परंपरा में ग्रियर्सन का योगदान अतुलनीय है।

मिश्र बंधु

हिंदी साहित्य इतिहास लेखन में मिश्र बंधुओं का प्रयास महत्वपूर्ण है मिश्र बंधु तीन भाई थे सुखदेव बिहारी मिश्रा श्याम बिहारी मिश्रा तथा गणेश बिहारी मिश्रा अभी तक सर्वाधिक वृहद साहित्य इतिहास मित्र बंधु विनोद इन्हीं के द्वारा लिखा गया जिनमें लगभग 5000 कवियों को स्थान दिया या ग्रंथ चार भागों में विभाजित है प्रथम तीन खंड सन 1913 ईस्वी में छपा और चौथा सन 1934 ईस्वी में प्रकाशित हुआ इन्होंने तत्वों की प्रमाणिकता दी है स्वयं आचार्य शुक्ल ने स्वीकार किया है- *"कवियों के परिचयात्मक विवरण मायने प्राया मिश्र बंद विनोद से ही लिए हैं।"*

मिश्र बंधु विनोद में काल विभाजन एवं नामकरण पर भी सोता का परिचय दिया है प्रारंभिक काल माध्यमिक काल अलंकृत काल परिवर्तन तथा आधुनिक काल सहित इतिहास में पहली बार किसी इतिहास ग्रंथ में पांच सहस्त्र कवियों का परिचय प्राप्त होता है उन्होंने रचना के मूल्यांकन में तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जिसमें देव बड़े के बिहारी के विवाद को भी जन्म दिया।

1.5.2 आचार्य शुक्ल के इतिहास लेखन में योगदान

हिंदी साहित्य इतिहास लेखन में आचार्य शुक्ल का सर्वोपरि स्थान है इन्होंने इतिहास आलोचना निबंध के जगत में व्यापक कार्य किया है। इनके सम्बंध में न भूतो न भविष्यति वाला कथन चरितार्थ है। आचार्य शुक्ल ने इतिहास की सभी परंपराओं से भिन्न विधि वादी परंपरा का अनुसरण किया इन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा के हिंदी शब्द सागर की भूमिका के रूप में हिंदी साहित्य का विकास 1929 लिखा जो कि आगे चलकर परिवर्धित संस्करण 1939 में हिंदी साहित्य का इतिहास नाम से प्रकाशित हुआ। आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि पूर्णता स्पष्ट परिपथ को विकसित है वे लिखते हैं कि- *"जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्र पत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चय है कि जनता की चित्र बताएं परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है आदि से अंत तक इन्हीं चित्र व्रतियों की परंपरा को पर रखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य बिठाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक सामाजिक सांप्रदायिक व धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।"* इस कथन के आधार पर हम इस दृष्टिकोण में अंतर्निहित चार मान्यताओं को समझ सकते हैं -

1. प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति संचित प्रतिबिंब होता है।
2. जनता की चित्तवृत्ति बदलती है तो उसी के अनुसार साहित्य भी बदल जाता है।
3. जनता की चित्तवृत्ति प्रायः राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक व धार्मिक कारणों से बदलती है।
4. साहित्य के इतिहास का मूल अर्थ है यह प्रत्यक्षीकरण करना कि चित्तवृत्तियाँ कैसे बदलीं? व उनके बदलने से साहित्य के स्वरूप में कैसा परिवर्तन हुआ ?

आचार्य शुक्ल इतिहास दृष्टि विधि वादी है विधि वाद का अर्थ है - किसी कार्य की व्याख्या वैज्ञानिक व वस्तुनिष्ठ कारणों के आधार पर करना। वस्तुतः वैज्ञानिक चिंतन प्रत्यक्षवाद पर ही आधारित है सर्वप्रथम प्रत्यक्षवाद का प्रयोग पश्चिमी चिंतक तेन ने किया था जिन्होंने साहित्य की व्याख्या तीन तत्वों के आधार पर की - जाति, वातावरण व रचना का क्षण। यहां जाति का अर्थ समाज वातावरण का अर्थ चित्र व्रतियों को बनाने वाली स्थितियों से तथा छड़ का अर्थ रचना के विशेष समय से है। आचार्य शुक्ल ने सामान्यता इन्हीं तीन तत्वों के माध्यम से साहित्य इतिहास लिखा है इस कारण उनके इतिहास में युगीन परिस्थितियों का विश्लेषण अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है।

आचार्य शुक्ल ने कवियों एवं रचनाओं के विश्लेषण हेतु अपने सूक्ष्म दृष्टि का प्रयोग किया एवं घटनाओं की व्याख्या के लिए युगीन परिस्थितियों के आधार पर की जैसे भक्ति काल के उद्भव में इस्लाम की प्रतिक्रिया का प्रधान कारण बताया संत काव्य में शगुन विरोधी दृष्टिकोण पर इस्लामी एकेश्वरवाद का प्रभाव माना व सूफियों के प्रेम काव्य को फारसी परंपरा की मसनवी शैली के रूप में व्याख्यायित किया। यद्यपि कई स्थानों पर विद्वानों ने अपनी असहमति जताई तथापि हिंदी साहित्य का इतिहास पूर्वर्ती एवं परवर्ती इतिहासों की तुलना में अधिक पुष्ट है।

1.5.3 शुक्लोत्तर इतिहास लेखन की परम्परा

हिंदी साहित्य इतिहास लेखन की सुदृढ़ परंपरा रही है। जिसमें गार्सा द तासी से लेकर समकालीन इतिहासकारों के महत्वपूर्ण भूमिका रही है शुक्लोत्तर साहित्य इतिहास लेखन की एक विकसित परंपरा मैं हजारी प्रसाद द्विवेदी डॉक्टर बच्चन सिंह डॉ रामकुमार वर्मा रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे महनीय साहित्यकारों का योगदान है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य शुक्ल के बाद हिंदी साहित्य इतिहास में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सर्वाधिक प्रभावित किया इन्होंने इतिहास संबंधी तीन पुस्तकों की रचना की -

1. हिंदी साहित्य की भूमिका (1940)
2. हिंदी साहित्य का उद्भव व विकास (1952)
3. हिंदी साहित्य का आदिकाल (1952)

सर्वप्रथम आचार्य शुक्ल के ऐतिहासिक विवेचन पर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने असहमति जताई थी जिस का सर्वाधिक प्रभाव आदिकाल एवं भक्ति काल पर पड़ा जिसमें शुक्ला जी ने आदिकाल को तथा कथित सांप्रदायिक साहित्य कहा और सिद्धनाथ जैन साहित्य को साहित्य इतिहास से बाहर कर दिया किंतु आचार्य द्विवेदी जी ने इसका खंडन करते हुए कहा कि यदि हम धार्मिक साहित्य को बाहर करेंगे तो हमें संपूर्ण भक्तिकाल को साहित्य के क्षेत्र से बाहर करना पड़ेगा आचार्य शुक्ल ने प्रत्यक्ष वादी विवेचन में भक्ति साहित्य इस्लाम की प्रतिक्रिया में विकसित हुआ मानते हैं जिसमें लिखा है - "अपने पौरुष से हताश जाति के पास ईश्वर की करुणा व शक्ति में ध्यान लगाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?" जिस पर आचार्य द्विवेदी जी ने इस मान्यता को खंडित करते हुए यह प्रश्न उठाया कि जो भक्ति साहित्य दक्षिण भारत में सातवीं आठवीं सदी से ही आलवार परंपरा में विकसित हो चुकी थी उसे इस्लामी आक्रमण का परिणाम कैसे माना जा सकता है आचार्य द्विवेदी जी की मान्यता है कि भक्ति साहित्य भारत की परंपरा का स्वतः स्फूर्त विकास है। आचार्य द्विवेदी ने शुक्ल के कुछ मान्यताओं का विरोध करने के बावजूद भी साहित्यिक ढांचा में एकरूपता दिखाई पड़ती है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में रामस्वरूप चतुर्वेदी का स्थान महत्वपूर्ण है। आचार्य शुक्ल व आचार्य द्विवेदी इतिहास लेखन मैं तथ्यों की प्रामाणिकता एवं संतुलित इतिहास बोध एवं साहित्यिक विवेचन में वैज्ञानिकता का पूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है। वहाँ रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' ग्रंथ की रचना कर साहित्य के इतिहास को एक नई दृष्टि प्रदान की। संबंधित ग्रंथ में 'संवेदना' और 'विकास' से स्पष्ट करते हैं कि वह इतिहास को केवल कालक्रमिक तथ्यों के रूप में नहीं देखते बल्कि साहित्य और संवेदना का परस्पर संबंध स्पष्ट करते हुए आगे बढ़ते हैं। इनके इतिहास लेखन की एक प्रमुख विशेषता है कि वह भाषा और साहित्य में गहरे संबंधों को खोज पाते हैं। उन्होंने अलग-अलग साहित्यिक परंपराओं के विषयों के अध्ययन के लिए उनकी भाषिक प्रवृत्तियों की गहरी समीक्षा की है; और तुलनात्मक उदाहरण देकर व्याख्याओं को प्रमाणित भी किया है। इसी क्रम में कहीं-कहीं वे साहित्य व अन्य कलाओं की भी सुंदर तुलना करते हैं। इसमें सबसे अच्छा उदाहरण वहां दिखता है जहां उन्होंने रीतिकालीन कविता और समस्त ललित कलाओं के विकास को एक ही सूत्र में बांधने का प्रयास किया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रायः आचार्य शुक्ल इतिहास दृष्टि से प्रभावित हैं। इसका प्रमाण आचार्य शुक्ला व आचार्य द्विवेदी के मध्य विवाद मैं स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

सामान्यतः डॉ. चतुर्वेदी ने साहित्य के इतिहास में एक नया दृष्टिकोण दिया है। वह युगीन दृष्टिकोण एवं परंपरावादी दृष्टिकोण के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हुए चलते हैं। इस रूप में विचारों, तथ्यों और दृष्टि का समन्वय इस इतिहास लेखन की सर्वप्रमुख विशेषता है। संभवत इसीलिए यह पहली रचना है जिसे साहित्य के इतिहास लेखन में व्यास सम्मान सहित कई पुरस्कार मिले हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा :

सन 18 सो 93 ईस्वी में डॉ श्याम सुंदर दास जी के द्वारा नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी यह सभा साहित्य को खोजने एवं उन्हें एकरूपता प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संपादित हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास सोलह खंडों में विभाजित है शताधिक लेखकों के द्वारा यह प्रयास साहित्य जगत में अतुलनीय है। सोलह खंडों में विभाजित यह वृहत इतिहास इस प्रकार है -

प्रथम - हिंदी साहित्य की पीठिका - डॉक्टर राजबली पांडे

दूसरा - हिंदी भाषा का विकास - डॉ. धीरेंद्र वर्मा

तीसरा - आदिकाल - पं० करुणापति त्रिपाठी व वासुदेव सिंह

चौथा - भक्तिकाल : निर्गुण भक्ति - परशुराम चतुर्वेदी

पांचवा - भक्तिकाल : सगुण भक्ति - देवेंद्र नाथ शर्मा व विजयेंद्र स्नातक

छठा - रीतिकाल : रीतिबद्ध - डॉ नगेंद्र

सातवां - रीतिकाल : रीतिमुक्त - डॉ. भागीरथ मिश्र

आठवां - हिंदी साहित्य का अभ्युत्थान : भारतेंदु काल (संवत 1900-1950 वि तक) - डॉ. विनय मोहन शर्मा

नवा - द्विवेदी काल (संवत 1950-75 वि) - पं० सुधाकर पांडे

दसवां - उत्कर्ष काल : काव्य (संवत 1975-95) डॉ. नगेंद्र

ग्यारहवां - उत्कर्ष काल : नाटक (संवत 1975-95 वि) - सावित्री सिंह

बारहवां - कथा साहित्य (संवत 1975) - डॉ. निर्मला जैन

तेरहवां- समालोचना, निबंध और पत्रकारिता (संवत 1975-95) लक्ष्मीनारायण सुधांशु

चौदहवाँ - अद्यतन काल (सं० 1995-2017 वि० तक) - डॉ. हरवंशलाल शर्मा व डॉ कैलाश चंद्र भाटिया

पंद्रहवां - आंतर भारती हिंदी साहित्य - डॉ. नगेन्द्र और पं० राहुल सांकृत्यायन

सोलहवां - हिंदी का लोक साहित्य - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय

1.5.4 समकालीन इतिहास लेखन के प्रयास

हजारी प्रसाद द्विवेदी के परवर्ती विद्वानों ने साहित्य इतिहास लेखन मैं स्तुत्य प्रयास किए हैं। ऐसे विद्वानों तथा उनके ग्रंथों की संक्षिप्त जानकारी निम्नलिखित दी गई है -

1. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डॉ गणपतिचंद्रगुप्त
2. हिंदी साहित्य का अतीत : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
3. साहित्य का इतिहास दर्शन : नलिन विलोचन शर्मा
4. आधुनिक हिंदी साहित्य : नंददुलारे वाजपेई
5. हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास : सूर्यकांत शास्त्री
6. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास : कृष्णशंकर शुक्ला
7. खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास : ब्रजरत्न दास
8. ब्रजमाधुरी सार : वियोगी हरि
9. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह
10. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास : सुमन राजे
11. हिंदी साहित्य का मौखिक इतिहास : नीलाभ
12. हिंदी साहित्य का ओझल नारी इतिहास : नीरजा माधव

बोध प्रश्न :

1. साहित्येतिहास लेखन परम्परा से आप क्या समझते हैं ? व्याख्यायित कीजिये।
2. गार्सा द तासी एवं जार्ज ग्रियर्सन के ऐतिहासिक दृष्टि का विश्लेषण कीजिये।
3. हिंदी साहित्येतिहास में आचार्य शुक्ल के योगदान को परिभाषित कीजिए।
4. आचार्य शुक्ल व हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन कीजिये।
5. समकालीन साहित्येतिहास लेखन परम्परा में किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

1.6 हिंदी साहित्य का इतिहास

किसी भी साहित्य का इतिहास कवियों और लेखकों की रचनाओं एवं जीवन वृत्त से बहुत कुछ आगे शैली विशेष पर आधृत होती है। जिसकी युगीन प्रवृत्तियां, परिस्थितियाँ , देश, काल, वातावरण, प्रवृत्ति विशेष काल विभाजन, नामकरण एवं सीमा निर्धारण का व्यापक फलक होता है। जिसकी समग्रता का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिक चिंतन आवश्यक हो जाता है। अतएव हिंदी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन, नामकरण एवं सीमा निर्धारण को विभिन्न इतिहासकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण स्थापित किए हैं। जो इस प्रकार हैं –

1.6.1 काल विभाजन एवं सीमा निर्धारण

प्रत्येक युग में साहित्य का स्वरूप प्रवृत्ति विशेष रही है। जहाँ पर साहित्य की प्रारंभिक अवस्था में वीरोचित कविताएं हुई। राजा- महाराजाओं की प्रशंसा में चारण- भाट कवियों ने स्तुतियाँ गायीं तो युद्धों का सजीव वर्णन प्रस्तुत किया। इसके उपरांत भक्त कवियों का एक संपूर्ण कालखंड रहा। जिसमें सगुण से निर्गुण तक एवं ज्ञान से प्रेम कविताओं ने साहित्य में अलख जगाई। राधा कृष्ण के प्रेम को आलंबन बनाकर साहित्य में प्रेम को एक उच्चता प्रदान की। साहित्य को काव्यशास्त्रीय परंपरा से जोड़कर रीति से बद्ध रूप एवं मुक्त रूप प्रस्तुत किया। तो आधुनिक युग में राष्ट्रीयता ने कविता जगत में प्रवेश द्वार खोल दिया। साहित्य में काल विभाजन की सुदृढ़ परंपरा जॉर्ज ग्रियर्सन से माना जाता है। उससे पहले कवियों के जीवनवृत्त का वर्णन ही प्राप्त होता है। अतः साहित्य में काल विभाजन का प्रस्थान बिंदु जॉर्ज ग्रियर्सन के इतिहास से माना जा सकता है। ग्रियर्सन ने पहली बार काल विभाजन का राजनीतिक दृष्टिकोण रखा। और ग्यारह काल खंडों में विभाजित किया है -

1. चारण काल (700-1300 ईस्वी)
2. पंद्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण
3. जायसी की प्रेम कविता
4. ब्रज का कृष्ण संप्रदाय
5. मुगल दरबार

6. तुलसीदास
7. रीतिकाव्य
8. तुलसीदास के अन्य परवर्ती
9. अट्ठारहवीं शताब्दी
10. कंपनी के शासन में हिंदुस्तान
11. महारानी विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान

हिंदी साहित्य की प्रारंभिक अवस्था को जार्ज ग्रियर्सन ने चारण काल नाम से अभिहित किया। और उसके अंतर्गत नौ कवियों का उल्लेख किया- पुष्य कवि, खुमाण सिंह, केदार, कुमार पाल ,अनन्यदास, चंद, जगनिक, जोधराज, एवं शांगधर। ग्रियर्सन ने काल विभाजन की नींव डाल दी। जिसके बिना साहित्य का विवेचन संभव नहीं था। मिश्र बंधुओं ने अपने वृहत साहित्य इतिहास 'मिश्रबंधु विनोद' को पांच कालखंडों में वर्गीकृत किया। तथापि पहले तीन काल खण्डों को पुनः दो-दो उपखण्डों में विभाजित कर अध्ययन की जटिलता को सरल बना दिया। मिश्रबंधु का काल विभाजन इस प्रकार है -

1. प्रारंभिक काल - पूर्व प्रारंभिक काल (संवत 700- 1343 वि)
   उत्तर आरंभिक काल (संवत 1344-1444 वि)
2. माध्यमिक काल - पूर्व माध्यमिक काल (संवत 1445-1560 वि)
   प्रौढ़ माध्यमिक काल (संवत 1561-1680 वि)
3. अलंकृत काल - पूर्व अलंकृत काल (संवत 1681-1790 वि)
   -उत्तर अलंकृत काल (संवत 1791-889 वि)
4. परिवर्तन काल - संवत 1890-1924 वि
5. वर्तमान काल - संवत 1926 वि से अद्यतन

हिंदी साहित्य में काल विभाजन सबसे प्रामाणिक एवं स्वस्थ आधार आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया। उन्होंने 900 वर्षों की साहित्यिक परंपरा को चार काल खंडों में विभाजित किया। जिसमें उन्होंने वीरगाथा काल को महाराजा भोज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय के कुछ पीछे तक माना जा सकता है। आचार्य शुक्ल का काल विभाजन इस प्रकार है -

1. वीरगाथा काल - संवत 1050- 1375 विक्रमी
2. भक्तिकाल - संवत 1375- 1700 विक्रमी
3. रीतिकाल। - संवत 1700- 1900विक्रमी
4. आधुनिक काल - संवत 1900 विक्रमी से अद्यतन

आचार्य शुक्ल ने इतिहास लेखन में विधेयवादी परंपरा का अनुसरण किया। जिसमें तथ्यों एवं तर्कों का विश्लेषण वैज्ञानिक आधार पर किया जाता है। आचार्य शुक्ल ने प्रत्येक कालखंड का आधार एवं सीमा निर्धारण युगीन काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर प्रस्तुत किया। सामान्यतः साहित्य इतिहास में काल विभाजन एवं सीमा निर्धारण विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न मत प्रदान किए गए हैं। और उसके पक्ष में अपना मत भी प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल के काल विभाजन को स्वीकार तो किया किंतु कतिपय परिवर्तन भी किया। इनका काल विभाजन इस प्रकार है-

1. आदिकाल - 1000 - 1400 ईसवी
2. पूर्व मध्यकाल - 1400- 1700 ईसवी
3. उत्तर मध्यकाल - 1700- 1980 ईसवी
4. आधुनिक काल - 1900 ईसवी से अद्यतन

डॉ रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' ग्रंथ लिखा। जिसमें उन्होंने काल विभाजन का आलोचनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रारंभिक अवस्था को संधिकाल में विभाजित कर संवत 750 विक्रमी से इसे माना।

1. संधिकाल (संवत 750- 1000 वि०)
2. चारण काल (संवत 1000- 1375 वि०)
3. भक्तिकाल (संवत 1375-1700 वि०)
4. रीतिकाल (संवत 1700- 1900 वि०)
5. आधुनिक काल (संवत 1900 वि० से अद्यतन)

यद्यपि रामकुमार वर्मा जी ने अधिकांशतः आचार्य शुक्ल के काल विभाजन का अनुसरण किया। केवल आरंभिक अवस्था को और पीछे तक ले जाकर संधिकाल के अंतर्गत रखा। किंतु साहित्य प्रवृत्तियों के आधार पर संधिकाल से अधिक राहुल सांकृत्यायन का सिद्ध सामंत काल समिति एवं तर्कसंगत लगता है।

बोध प्रश्न :

1. काल विभाजन एवं सीमा निर्धारण के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. जॉर्ज ग्रियर्सन का काल विभाजन एवं सीमा निर्धारण बहुत कुछ राजनीतिक है; स्पष्ट कीजिए।
3. आचार्य शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी द्विवेदी के काल विभाजन का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
4. काल विभाजन की स्वस्थ परंपरा की शुरुआत किसने की टिप्पणी लिखिए।

1.6.2 नामकरण

किसी भी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करने के बाद प्रत्येक कालखंड का नाम नामकरण करना पूर्ण प्रक्रिया मानी जाती है। नामकरण का आधार यादृच्छिक नहीं बल्कि साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर होना चाहिए; जिससे उस समय की साहित्यिक विशेषताओं का परिचय प्राप्त करने में सरलता हो। हिंदी साहित्य में जिस प्रकार काल विभाजन में विभिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार हैं; उसी प्रकार नामकरण में भी मतैक्य का अभाव दिखाई पड़ता है। प्रत्येक विद्वानों ने अपनी साहित्यिक समझ के आधार पर नामकरण करने का प्रयास किया है। उदाहरण हेतु हिंदी साहित्य की आरंभिक अवस्था को आचार्य शुक्ल ने वीरोचित कविताओं का आधार मानकर 'वीरगाथा' काल कहा, तो वहीं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उसी अवस्था को 'आदिकाल' नाम दिया। आचार्य शुक्ल ने जिस उपलब्ध साहित्यिक सामग्री के आधार पर प्रवृत्तिगत नामकरण तथा काल विभाजन किया। उसमें अधिकांशतः कृतियां दो प्रकार की भाषाओं में मिलती हैं - एक तो अपभ्रंश भाषा दूसरी देसी भाषा। सामान्यतः साहित्य में पहले पहल नामकरण करने की चेष्टा जॉर्ज ग्रियर्सन के द्वारा की गई थी। इन्होंने अपने साहित्य इतिहास को ग्यारह काल खंडों में विभाजित कर अपनी साहित्यिक दृष्टिकोण के आधार पर नामकरण किया। इसके उपरांत तो विद्वानों में प्रत्येक कालखंड का नाम एवं उपनाम रखने की परिपाटी चल पड़ी। जैसे मिश्र बंधुओं ने प्रारंभिक काल को दो उप भागों में बांटकर उसका नामकरण किया- पूर्व प्रारंभिक काल एवं उत्तर आरंभिक काल।

अनेक विद्वानों ने हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत काल विभाजन और नामकरण किया। लेकिन हिंदी साहित्य का वास्तविक काल विभाजन और नामकरण करने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को ही जाता है। जिन्होंने युगीन प्रवृत्तियां, परिस्थितियों एवं शैली विशेष को आधार मानकर काल विभाजन किया, एवं उनका प्रवृत्तिगत नामकरण भी किया जो पूर्ववर्ती एवं परवर्ती इतिहासकारों से अधिक स्वस्थ एवं तर्कसंगत है। आचार्य शुक्ल के पश्चात अधिकांश विद्वानों ने उन्हीं के नामकरण का आधार लिया सीमा निर्धारण ज्यों का त्यों ही रख दिया है। सामान्यतः आदिकाल के नामकरण में विभिन्न विद्वानों में एकमत का भाव मिलता है। अतः सबसे अधिक विवाद का कारण आदिकाल ही रहा है जिसको अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग नामों से अभिहित किया है।

आदिकाल

हिंदी साहित्य इतिहास मैं सर्वप्रथम नामकरण जॉर्ज ग्रियर्सन ने किया। उन्होंने आदिकाल को *चारण काल* से अभिहित किया। और सन् 700-1300 ईसवी तक 600 वर्षों के कालखंड को आधार बनाया। मित्र बंधुओं ने इसे पूर्व प्रारंभिक काल एवं उत्तर आरंभिक काल दो भागों में बांटा है। मिश्रबंधु का *'आरंभिक काल'* नाम देना आदिकालीन काव्य प्रवृत्तियों के साथ अधिक तर्कसंगत नहीं है। आचार्य शुक्ल ने आरंभिक युग के साहित्य को दो कोटियों में बांटा है - अपभ्रंश भाषा और देसी भाषा। उन्होंने सिद्ध योगियों की रचनाओं को संप्रदायिक मानकर साहित्य से बाहर कर दिया ; और बारह रचनाओं के आधार पर इस काल को *'वीरगाथा*

काल' के नाम से अभिहित किया। आचार्य शुक्ल ने जिन बारह रचनाओं के आधार पर वीरगाथा काल नाम किया हुए हैं। वे इस प्रकार हैं - (1) विजयपाल रासो, (2) हम्मीर रासो, (3) कीर्तिलता, (4) कीर्तिपताका, (5) खुमाणरासो, (6) बीसलदेव रासो, (7) पृथ्वीराजरासो (8) जयचंद्रप्रकाश (9) जयमयंकजसचंद्रिका (10) परमालरासो (11) खुसरो की पहेलियां (12) विद्यापति पदावली। इन रचनाओं में से अधिकतर अधिकतर रचनाएं अप्रमाणिक एवं सूचना मात्र हैं; जिसमें पृथ्वीराज रासो एवं परमाल रासो प्रमुख है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी और डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने हिंदी साहित्य के आदिकाल को *'अपभ्रंश काल'* नाम प्रस्तुत किया। उन्होंने आदिकाल के साहित्य में अपभ्रंश भाषा की प्रधानता को स्वीकारते हुए उन्होंने इस काल को अपभ्रंश काल कहना अधिक समीचीन समझा है। आदिकाल की प्रारंभिक अवस्था में अपभ्रंश एवं देसी भाषा का प्रयोग अधिक था अतः अपभ्रंश काल कहना अधिक तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है क्योंकि इसमें पाठक को हिंदी साहित्य की तरफ जाकर अपभ्रंश साहित्य की ओर आकृष्ट करता है

डॉ रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल को *'संधिकाल'* एवं *'चारण काल'* दो नामों से संज्ञायित किया है। इसी क्रम में राहुल सांकृत्यायन जी ने आदिकाल की प्रथम अवस्था को *'सिद्ध सामंत काल'* कहते हैं। यह नामकरण युगीन साहित्यिक प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। क्योंकि इस काल के साहित्य में सिद्धों के द्वारा लिखा गया धार्मिक साहित्य ही प्रधान है। इस काल में 'सामंत' शब्द से उस समय की राजनीतिक स्थिति का पता चलता है। लेकिन सिद्ध सामंत युग में सभी धार्मिक और सांप्रदायिक तथा अलौकिक रचनाएं नहीं आती हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है किस सिद्ध सामंत युग नाम भी साहित्य के लिए उपयुक्त नाम नहीं है। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य की पहली अवस्था को *'बीजवपन काल'* कहा है। किन्तु युगीन साहित्य प्रवृत्ति को देखते हुए यह नाम युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है; क्योंकि उसमें पूर्ववर्ती सभी काव्य रूढ़ियों तथा परंपराओं का निर्वाह हुआ है और उसके साथ कुछ नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य की आरंभिक अवस्था को *'आदिकाल'* के नाम से प्रस्तुत किया। जिस पर वे कहते हैं कि, "*वस्तुतः हिंदी का 'आदिकाल' शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम भावापन्न, परंपरा विनर्मुक्त, काव्यरूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है, यह बात ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परंपरा प्रेमी रूढ़िग्रस्त और सजग - सचेत कवियों का काल है।*" साहित्य के आरंभिक अवस्था के नामकरण में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न आधार लेकर नाम प्रस्तुत किए हैं। आचार्य शुक्ल ने युगीन काव्य प्रवृत्तियों को आधार मानकर वीरगाथा काल कहा। सिद्ध एवं योगियों की रचनाओं की बहुलता को देखते हुए राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध सामंत युग कहा। चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बच्चन सिंह एवं डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने भाषाई आधार मानकर अपभ्रंश काल उपयुक्त समझा। इन सभी में हजारी प्रसाद द्विवेदी का आदिकाल नाम अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

नाम		**प्रयोक्ता**
चारण काल	-	जॉर्ज ग्रियर्सन
प्रारंभिक काल	-	मिश्रबंधु
बीजवपन काल	-	आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
वीरगाथा काल	-	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
सिद्ध सामंत काल	-	राहुल सांकृत्यायन
वीर काल	-	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
संधि काल एवं चारण काल	-	डॉ रामकुमार वर्मा
आदिकाल	-	हजारी प्रसाद द्विवेदी
आधार काल	-	सुमन राजे

उत्तर मध्यकाल के संदर्भ में नामकरण का सीमित विवाद है। इस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों को देखते हुए जॉर्ज ग्रियर्सन ने *'रीतिकाव्य'* मिश्रबंधुओं ने इसे *'अलंकृतकाल'* रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने *'कलाकाल'* रामचंद्र शुक्ल ने *'रीतिकाल'* एवं विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने *'श्रृंगारकाल'* कहा। यद्यपि इस काल की साहित्यिक प्रवृतियां रीति प्रणाली के आधार पर चली। जिसमें रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, एवं रीति से मुक्त होने की परम्परा रही। अतः उत्तर मध्यकाल व कलाकाल जैसे नाम की आवश्यकता नहीं है। युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर आचार्य शुक्ल का रीतिकाल नाम अधिक समीचीन प्रतीत होता है। इसका तात्पर्य हुआ कि इस काल को 'अलंकृत' एवं 'श्रृंगार' भी अपने आप में अद्‌भुत है। अतः अब यह सर्व सम्मत बन चुकी है कि उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल ही कहा जाए। प्रमुख विद्वानों द्वारा रीतिकाल के संदर्भ में किया गया नामकरण निम्नवत है -

नाम		**प्रयोक्ता**
रीतिकाव्य	-	जार्ज ग्रियर्सन
अलंकृत काल	-	मिश्र बंधु
रीतिकाल	-	रामचंद्र शुक्ल
श्रृंगार काल	-	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
कला काल	-	रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'

आधुनिक काल में हिंदी गद्य साहित्य की कई विधाएं प्रचलित हो चली थी। जिसमें नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना एवं कथेतर गद्य में आत्मकथा, यात्रासाहित्य, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, पत्र, एवं साक्षात्कार इत्यादि की प्रमुखता रही है। आधुनिक युग में पत्रिकाओं का प्रचलन भी प्रारंभ हो गया था। भिन्न-भिन्न विधाओं वाली पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही थी। आधुनिक युग का प्रवेश द्वार भारतेंदु हरिश्चंद्र जी से होता। जिनका साहित्य, रंगमंच एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान रहा है। अतः आधुनिक काल के प्रथम

अवस्था का नामकरण *'भारतेंदु युग'* अधिक समीचीन प्रतीत होता है। यद्यपि इस नाम पर सर्वसम्मति बन चुकी थी तथापि इसे आचार्य शुक्ल जी ने *'प्रथम उत्थान'* कहा एवं गणपतिचंद्र गुप्त ने *'स्वच्छंदता काल'* कहना उचित समझा। इसके उपरांत 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर 'द्विवेदी युग' चल पड़ा। किंतु आचार्य शुक्ल जी ने *'द्वितीय उत्थान'* व गणपतिचंद्र गुप्त ने *'पुनर्जागरण काल'* कहा। युगांत होने के बाद वाद का प्रचलन बढ़ गया। इस कारण छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, आदि नाम सुझाये जाने लगे। सामान्यतः कविता क्षेत्र में नामकरण युगीन प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया। किंतु आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का नामकरण साहित्य की विशेषताओं के आधार पर न करके व्यक्तिगत ही रहा। जैसे निबंध के क्षेत्र में 'शुक्ल पूर्व युग' 'शुक्ल युग' 'शुक्लोत्तर युग', उपन्यास के क्षेत्र में 'पूर्व प्रेमचंद युग' 'प्रेमचंद्र युग' 'प्रेमचंदोत्तर युग', 'समकालीन उपन्यास' एवं 'नारीवादी उपन्यास' जैसे नामकरण किए गए।

इस प्रकार नामकरण करने का आधार साहित्य विशेषताओं एवं युगीन परिस्थितियों को बनाकर किया गया। जिसमें विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने-अपने मत प्रस्तुत किए गए। काल विभाजन से लेकर सीमा निर्धारण एवं उनका नामकरण करने तक विद्वानों ने अपने तर्क प्रस्तुत किए एवं परवर्ती विद्वानों द्वारा दिए गए तर्कों का खंडन भी किया। साहित्य की प्रारंभिक अवस्था आदिकाल से लेकर अंतिम अवस्था आधुनिक काल तक की साहित्यिक यात्रा में बहुत कुछ परिवर्तन देखा गया है। नामकरण के परिप्रेक्ष्य में भक्तिकाल समस्त विद्वानों द्वारा निर्विवाद रूप से मान्य रहा है। रीतिकाल में उनकी कोटियां निर्धारण करते समय अलग-अलग विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न कोटिया निर्धारित की गई है। जिसमें उस काल के कवियों को रखा गया है। नामकरण के संदर्भ में सबसे अधिक विवाद आदिकाल मैं रहा है। और यह विवाद आज भी उसी स्वरूप में है जिस स्वरुप में पहले था।

बोध प्रश्न :

1. हिंदी साहित्य की प्रारंभिक अवस्था के नामकरण को स्पष्ट कीजिए।
2. 'आदिकाल' के परिप्रेक्ष्य में आचार्य शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत स्पष्ट करें।
3. साहित्य की प्रारंभिक अवस्था को प्रमुख विद्वानों द्वारा किए गए नामकरण को उल्लेखित करें।
4. राहुल सांकृत्यायन एवं आचार्य शुक्ल के नामकरण का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
5. रीतिकाल के नामकरण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

1.7 बोध प्रश्न:

1. हिंदी साहित्य के इतिहास दर्शन की विवेचना कीजिए।
2. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन हेतु आधारभूत सामग्री एवं परंपरा का उल्लेख कीजिए।
3. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा पर प्रकाश डालिए।
4. साहित्य के इतिहास लेखन के विभिन्न पद्धतियां बताइए।
5. हिंदी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन को लेकर किए गए प्रयासों की विवेचना कीजिए।
6. हिंदी साहित्य के कालों के नामकरण के विभिन्न प्रयासों का उल्लेख कीजिए।
7. काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता क्यों है? स्पष्ट कीजिए।
8. हिंदी साहित्य के आदिकाल के नामकरण का आधार क्या है? स्पष्ट कीजिए।
9. 'आदिकाल' के परिप्रेक्ष्य में आचार्य शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत स्पष्ट करें।
10. काल विभाजन की स्वस्थ परंपरा की शुरुआत किसने की टिप्पणी लिखिए।
11. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्या पर प्रकाश डालिए।
12.

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य राम्चान्द्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास : नागरी प्रचारिणी सभा
3. हिंदी साहित्य का आदिकाल : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिंदी साहित्य का संछिप्त इतिहास : विश्वनाथ त्रिपाठी
5. हिंदी साहित्य का अतीत : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
6. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : डॉ. बच्चन सिंह

इकाई : 2

इकाई की रूप-रेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावन
2.2 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि
2.3 परिस्थितियाँ
2.3.1 सामजिकपरिस्थितियाँ
2.3.2 राजनैतिकपरिस्थितियाँ
2.3.3 धार्मिकपरिस्थितियाँ
2.3.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ
2.4 आदिकालीनसाहित्य
2.4.1 रासोसाहित्य
2.4.1.1 नृत्यगीतपरकरासोकाव्य
2.4.1.2 छंद-वैविध्यपरकरासोकाव्य
2.4.2 नाथ साहित्य
2.4.3 जैन साहित्य
2.4.4 सिद्धसाहित्य
2.4.5 अमीरखुसरो
2.5 आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ
2.6 सारांश
2.7 बोधप्रश्न
2.8 उपयोगीपुस्तकें

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आदिकाल की पृष्ठभूमि, उसके साहित्य और साहित्य की प्रवित्तियों की विस्तार से चर्चा की गयी है।

- आदिकाल के स्वरूप और महत्त्व की चर्चा कर सकेंगे।
- अपभ्रंश के स्वरूप और विकास के साथ हीआदिकालीन अपभ्रंश साहित्य के महत्त्व को जान सकेंगे।
- आदिकालकीराजनैतिक, सामजिकऔर धार्मिक परिस्थितियों की चर्चा करेंगे।

- आदिकालीन साहित्य रासो साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य तथा अमीर खुसरो की कविताओं पर चर्चा करेंगे।
- आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों की चर्चा करेंगे।
- आदिकालीन साहित्य की भाषा की चर्चा करेंगे।

2.1 प्रस्तावन

किसी भी साहित्य को समझने के लिए आवश्यक है उस साहित्य की पृष्ठभूमि को समझा जाए। आदिकाल के साहित्य को समझने के लिए भी उसकी पृष्ठ भूमि को समझना बहुत आवश्यक है। आदिकाल हिंदी साहित्य का प्रारंभिककाल है जहाँ से हिंदी का प्रारंभ होता है। अलग-अलग साहित्येतिहासकारोंने इसे भिन्न-भिन्न नाम दिया। चारण काल, प्रारम्भिक काल, वीरगाथा काल, संधिकाल, सिद्ध सामंत काल तथा आदिकाल इन अलग-अलग नामों से इसे विद्वानों द्वारा संबोधित किया गया आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल के लिए वीरगाथा काल नाम दिया जो प्रविित्ति आधारित था। उसके बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी के इस प्रारंभिक काल के लिए आदिकाल नाम दिया जो विद्वानों में अधिक लोकप्रिय और सर्वमान्य हुआ। इसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण उसका सर्वसमावेसी होना था। इस आदिकाल नाम में वैविद्ध्य की गुंजाइश अन्य से कुछ अधिक है। उस समय जितनी भी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ थी उन सबका समावेश इस नाम में होजाता है। भाषा के स्तर पर भी आदिकाल प्रारंभिक युग ही था। अतः इस दृष्टि से भी यह नाम सटीक ही बैठता है। हिंदी भाषा की विकास यात्रा 1 ०वी शताब्दी से आरम्भा होती है। इस लिए इस काल की सीमा भी सन 1000 ई. से 1400 ई. मानी गयी। इन चार सौ वर्षों के अंतर्गत लिखा गया साहित्य आदिकालीन साहित्य कहाँ जाता है। यह साहित्य अपभ्रंश के बहुत निकट का साहित्य था। इस इकाई में हम आदिकालीन साहित्य का सघनता से विश्लेषण करेंगे।

2.2 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि

हिंदी साहित्य के प्रारंभ से ठीक पहले 500 ई. पूर्व से 1000 ई. तक अपभ्रंश का समय था । अपभ्रंष का शाब्दिक अर्थ है – विकृत, भ्रष्ट या अशुद्ध। हिंदी साहित्य के आदिकाल के दो भाग किये गए हैं । पहला अपभ्रंश काव्यधारा और दूसरा भाषा काव्यधारा। अपभ्रंश के उत्तरवर्ती रूप में हिंदी भाषा के विकास के अंकुर फूटने लगे थे । इसी लिए चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने अपभ्रंष के इस उत्तरवर्ती रूप को पुरानीहिंदी कहना उचित बताया । इस प्रकार की रचनाओं में इतनी बोधगम्यता थी कि उसे हिंदी वाले भी समझ सकें । उदहारण के लिए एक दोहा प्रस्तुत है -

भल्ला हुआ जो मारिया, बहिणि म्हारो कंतु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु।।

अपभ्रंष काल के उस रूप को जिसे पुरानी हिंदी कहा गया, उसकी पृष्ठभूमि में सिद्ध साहित्य और जैन साहित्य मुख्या रूप से थे। सरहपा आदि सिद्धों ने पदों में अपनी रचना की जिन्हें चर्या पद कहते हैं। जैन कवियों

ने दोहे और चौपाई की पद्धति में प्रेमाख्यान जैसी रचनाओं का सृजन किया । सरहपा ने जिस प्रकार के दोहों का निर्माण किया, उसका स्वरूप कुछ ऐसे ही था-

ऊँचा-ऊँचा पाबत, तहिं वसै सबरी वाला।
मोरंगी पिच्छि पहिरहि सबरी गीवत गुज़री माला।।

सिद्ध कवियों के पूर्ववर्ती बौद्ध साहित्य की पृष्ठभूमि विद्यमान थी। जब बौद्ध साहित्य हीनयान और महायाँ में विभाजित होकर एक गिरती हुई अवस्था में था, तब इन सिद्ध कवियों ने अन्तःसाधना द्वारा उसके मूल सिधान्तों को पकड़ने की कोशिश की। इसमें सरहपा की भांति कन्हपा और लुइपा आदि 84 सिद्ध बताये जाते हैं । सरहपा और कन्हपा के दोहा कोष में इनकी प्रमुख रचनाये संगृहीत हैं जिनका सम्पादन बौद्धागान और दुहा नाम से किया गया। जिसमें पद और दोहा दो प्रकार की रचनाएँ हैं। आगे चलकर हम देखेंगे कि अन्तःसाधना और दोहा और पद की शैली का प्रभाव मध्यकाल में संतों के ऊपर पड़ा। उन्होंने शैली और अन्तःसाधना दोनों को अपने ढंग से अपनाया।

जैन साहित्य मुख्यरूप से चरित काव्य के रूप में लिखा गया। जिसमें पौराणिक आख्यानों को लेकर उसमें अपने ढंग से जैन सिद्धांतों को समाहित करने की चेष्टा कवियों द्वारा की गई। पुश्यदंत का 'महापुराण' और शालिभद्र सूर का 'बाहुबलीरास'तथा स्वयंभू का 'पउमचरिउ (पद्माचरित)' और रिट्ठणेमिचरिउ। स्वयंभू की पहली रचना राम की कथा पर आधारित है और दूसरी कृष्णा की कथा पर। इन दोनों कथाओं को तोड़-मरोड़ कर इन्होंने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। इन जैन कवियों ने चरित काव्य जैसे पुष्यदन्त का णायकुमारचरिउ और जसहरचरिउ ने लिखा। इन जैन कवियों के द्वारा कथा काव्य भी लिखा गया जैसे धनपाल का 'भविष्यत्कहा'। नीतिपरक रचनाएँ भी इनके द्वारा लिखी गयीं। जिसमें राम सिंह का 'पाहुणदोहा' बहुत महत्त्वपूर्ण रचना है। जैन कवियों की इस पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि यह परंपरा भक्तिकाल में दोहा चौपाई की शैली में चरित काव्य के रूप में आगे बढी। जैसे तुलसीदास का रामचरित मानस। इनके नीति परक दोहों की परंपरा भी भक्तिकाल में रहीम आदि के द्वारा अग्रसर हुई। तात्पर्य यह है कि अपभ्रंष काव्य धारा ने हिंदी साहित्य के आदि काल की भाषा काव्य धरा को और भक्तिकाल की रचनाओं तक को प्रभावित किया।

आदिकाल में जो रासो काव्य की परंपरा भाषा काव्य के अंतर्गत मिली उसकी भी पृष्ठभूमि अपभ्रंश काव्य में विद्यमान थी। अद्दहमाण (अब्दुलरहमान) की रचना सन्देश रासक जो एक बारहमासा के रूप में लिखा हुआ विरह काव्य है, जैसा भाषा काव्य में बीसलदेवरास है। आगे चलकर पृथ्वीराजरासो, खुम्मानरासो, परमालरासो आदि रचनाये इसी परंपरा में हुई। यह रासो रचनाएँ वीर रस परक और श्रृंगार रस परक दोनों ही रूपों में मिलती हैं। इसी काल में अमीर खुसरो की रचनाएँ, उनके दोहे, पहेलियाँ और मुकरियां भाषा में मिलती हैं। मैथिल कोकिल विद्यापति के पद भी इसी काल में लिखे गए। सूफी कवि मुल्ला दाउद का चंदायन भी इसी काल सीमा में लिखा गया। सबसे पहले गोरखनाथ की रचनाएँ जो गोरखबानी के रूप में पीताम्बरदत्त बडथ्हवाल द्वारासंपादित है, जिसमें दोहे (शबदी) और पद दोनों हैं।
गोरखनाथ का समय नौवीं - दसवीं शताब्दी था। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य के आदिकाल में भाषा साहित्य की दृष्टि से गोरखनाथ की रचनाएँ सर्वप्रथम लिखी गई।

आदिकाल की इस पृष्ठभूमि को देखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे आदिकाल कहा, किन्तु प्रवृत्ति के आधार पर इसे वीरगाथाकाल कहा। किसी ने चारणकाल किसी ने संधिकाल आदि नाम दिया। राहुल संकृत्यायन

ने हिंदी साहित्य का प्रारंभ सातवीं शताब्दी से मानते हुए इसे सिद्ध-सामंत युग कहा। भाषा की दृष्टि से सामान्य रूप से खड़ी बोली जिसमें अन्य बोलियों के भी मिश्रित रूप थे वही साधारणतया प्रचलित रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिकाल एक ऐसा काल है जिसने हिंदी साहित्य के स्वर्ण युग मध्यकाल की समस्त धाराओं को प्रभावित किया।

बोध प्रश्न

1. आदिकाल की समय सीमा क्या है ?
2. आदिकालीन साहित्य की भाषा का स्वरूप क्या था ?
3. पुरानी हिंदी क्या है ?

2.3 परिस्थितियाँ

कोई भी साहित्य अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। साहित्यिक रचानाओं पर अपने समय की आर्थिक, सामजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिश्थितियों का बहुत प्रभाव होता है। चाहे किसी भी युग के संदर्भा में चर्चा करें, उसके साहित्यिक मूल्य और उसकी कलात्मक व्याख्या के लिए उसके समाज की जानकारी आवश्यक सी प्रतीत होती है। साहित्यिक संवेदना की बनावट के पीछे आर्थिक सामाजिक संबंधों की गहरी छाया होती है। सामजिक मूल्यों और परिस्थितियों के बदलने के साथ ही साहित्य की संवेदना भी बदल जाती है। समाज और साहित्य दोनों मिलकर व्यक्ति की सोच, उसकी दृष्टि आदि की निर्मिती करते हैं। ऐसे में आवश्यक है कि आदिकालका अध्ययन करते हुए हम आदिकालीन सामजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों पर विचार करें।

2.3.1 सामजिक परिस्थितियाँ

जिस समय आदिकालीन साहित्य लिखा जा रहा था, उस समय विदेशी आक्रान्ताओं से भारतीय समाज अस्थिर था। भारत में जितने भी विदेशी आए वह भारतीय संस्कृति में घुल-मिल गए, सिवाय मुसलामानों के फिरभी सत्ता संघर्ष जारी था। क्षत्रिय समाज अधिकांश राज्यों में गद्दी पर था इस लिए उन्हें विदेशी आक्रान्ताओं से सीधे जूझना पड़ा। यह समय वास्तव में भारतीय समाज के लिए संकट का समय था भारतीय वर्ण व्यवस्था अपने विकृत रूप में पहुँच चुकी थी। इस विकृत वर्ण व्यवस्था का असर समाज पर गहरा पड़ा। दूसरे वर्ण-जाती के लोगों में ब्राह्मणों के प्रति रोष भाव जागृत हुआ इसका सबसे बड़ा उदाहरण सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य है। समाज में फैले धार्मिक पाखण्ड, अंधविश्वास और कर्मकांड से सामान्य जन मानस पीड़ित था इसी लिए इस काल के साहित्य में भी समाज की पह पीड़ा कर्मकांड आदि के विरोध के रूप में दिखाई देती है। यह युग शिक्षा की दृष्टि से भी अन्धकार का युग था। शिक्षा के अभाव में सांप्रदायिक तनाव, सती प्रथा और पर्दा प्रथा तथा विविध प्रकार के अध् विश्वासों का बोलबाला था। हम अपने प्राचीन गौरव की तरह से निरतर पतन की तरफ अग्रसर थे। हमारा ज्ञान-विज्ञान सब उन विदेशी आक्रान्ताओं के आतंक और प्रभाव में धूमिल पड़ता जा रहा था।

भारतीय समाज जो अपनी विविधता में एकता के लिए जाना जाता था वह अनेक जातियों और उपजातियों में बटकर अपने सामजिक आदर्श को खोता जा रहा था जातिगत भेदभाव और छूआछूत अपने चरम पर था। साधू- सन्यासी भी नैतिकता का आचरण छोड़ अपने शाप और वरदान के चंगुल में सामान्य जन को फंसाए रहना चाहते थे।

इस प्रकार की विषम सामजिक परिस्थितियों में आदिकालीन साहित्य रचा गया। समाज की इन परिस्थितियों का प्रभाव उन आदिकालीन रचनाकारों पर बहुत अधिक पड़ा। यह समय खासकर स्त्रियों के लिए काला समय था स्त्रियों की दशा में नित्यप्रति गिरावट ही आ रही थी। एक एक सामंत कई-कई स्त्रियाँ अपने साथ रखते थे। राजा के लिए स्त्री मात्र भूग का साधन थी स्त्रियाँ भी अपनी इस दुर्दशा को अपनी नियति मान बैठी थी। समाज की इसी कलुषित मानसिकता से उस समय का साहित्य भी अछूता नहीं रहा। अब धन संपत्ति और साम्राज्य विस्तार के साथ साथ सुन्दर स्त्रियों के लिए भी युद्ध लादे जाने लगे। राजसत्ता का नारी के प्रति जो भाव था उसका प्रभाव धर्म पर भी पड़ा। मंदिरों में भी देव दासियाँ रही जाने लगीं। वज्रयानियों और सिद्धों के साहित्य में नारी की दीन दशा को स्पष्टत: देखा जा सकता है।जनता की स्थिति अत्यंत दयनीय थी जनता ' शासन ' और ' धर्म ' दोनों से स्वयं को निराश्रित पा रहा था। वास्तविकता यह थी कि दोनों ही जनता का शोषण कर रहे थे। समाज छोटी-छोटी जातियों उपजातियों में विभाजित था , समाज में अनेक रूढ़ियां पनप रही थी। समाज में नारी की दशा अत्यंत सोचनीय अथवा दयनीय थी। वह मात्र भोग की वस्तु रह गई थी , उसका क्रय विक्रय किया जा रहा था। सामान्य जन शिक्षा से वंचित था , निर्धनता बढ़ती जा रही थी , सती प्रथा का भयंकर अभिशाप था राजपूतों में आत्मसम्मान का स्वाभिमान था। नारी के कारण युद्ध भी हुआ करते थे। राजाओं में बहु-विवाह की प्रथा का प्रचलन था। सामंती व्यवस्था से सामान्य जन आक्रांता।

बोध प्रश्न

1. आदिकाल की सामाजिक संरचना में जाती का क्या महत्त्व था ?
2. आदिकालीन समाज में शिक्षा का स्वरूप और स्तर क्या था ?
3. आदिकालीन समाज में स्त्रियों की दशा कैसीथी?

2.3.2 राजनैतिक परिस्थितियाँ

हिंदी साहित्य का आदिकाल भारतीय राजनीति का सबसे उथल-पुथल वाला समय था। यह समय और इस समय की ऐतिहासिक घटनाओं ने ण सिर्फ समाज अपितु साहित्य को भी प्रभावित किया। यही समय था जब भारत में बौद्ध मत अपने सर्वसमावेशी आचरण तथा राजाश्रय के प्रभाव से संपूर्ण उत्तर भारत से लेकर दक्षिण-पश्चिम एशिया के इरान, अफगानिस्तान, दक्षिण में श्रीलंका और पूर्वी देशों में बर्मा, तिब्बत, चीन, मंगोलिया,पूर्वीदीप समूह तक प्रसार पा चूका था। इसके कुछ ही समय बाद भारत में इस्लाम का प्रवेश हो चुका था। इसकेबरक्सजिसे विरोध का झंडा उठाना था वह था प्राचीन ब्राह्मण धर्म जो अपनी शक्ति खो चुका था। शंकराचार्य ने वेदान्त का प्रचार कर हिन्दू एकता को सैद्धांतिक स्तर पर बचाने का प्रयास किया तो व्यवहारिक

रूप से चार आश्रमों और चौसठ पीठों की स्थापना करके उन्हें एकता के सूत्र में जोड़ने का बड़ा काम किया। सामाजिक रूप से असंतुलित इस युग में राजनैतिक असंतुलन भी कम न था। राजवर्धन की मृत्यु के बाद उसका भाई हर्षवर्धन सिंघासनारूढ़ हुआ। हर्षवर्धन ने सन 606 ई. सिंघासन सम्भाला और अपनी प्रतिभा से विरोधियों पर विजय प्राप्त की। उसने कन्नौज को राजधानी बनाकर लगभग पूरे उत्तर भारत को अपने अधीन कर लिया। प्रख्यात चीनी यात्री ह्वेनसांग इन्हीं के काल में भारत आया था। जिसने आगे चलकर सी-यूं-की में उसने तत्कालीन भारत की सामजिक और राजनैतिक दशा का वर्णन किया है। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद एकता के सूत्र में बंधा उत्तर भारत छोटे छोटे राज्यों में बिखर गया।

राजवंशों के पारस्परिक युद्ध ने सामंतीय सोच को बढ़ावा दिया। आपसी उलझाव के कारण शासन प्रणाली इतनी कमज़ोर होती गई कि अब इन राजसत्ताओं में विदेशी आक्रमणकारियों से मुकाबला करने की शक्ति ही नहीं रही। स्थिति यह हो गई कि आपस में लड़ते लड़ते यह सभी राजे इस्लाम साम्राज्य की नींव में समा गए। तात्कालिक सामंतीय जीवन भोग विलास में आकंठ डूब गया। इतने के बड भी हिन्दू राजाओं का आपसी युद्ध बंद नहीं हुआ। पृथ्वीराज चौहान और जयचंद, पर्मार्दिदेव आदि का युद्ध किस्से छिपा है। `इन राजनैतिक परिस्थितियों में ८वी शताब्दी से १५वी शताब्दी तक यवनों, तुर्कों, अरबों और मुगलों के आक्रमण से हिन्दू राजाओं के पैर उखड गए और इस्लाम की स्थापना हुई। अब धीरे धीरे परिस्थिति यह बनाने लगी की तलवार के जोर पर हिन्दू जनता का धर्मांतरण कराया जाने लगा। लालच से, जोर से, प्रतिबन्ध से जैसे बन पड़ा वैसे इस्लामिक राजसत्ता ने भारत में अपना धार्मिक प्रसार शुरू कर दिया। वर्धन साम्राज्य को भारत का अंतिम साम्राज्य माना जाता है।हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद साम्राज्य लड़खड़ा गया।कासिम ने भारत पर सफल आक्रमण किया यह अरबों का प्रथम आक्रमण 712 ईस्वी में हुआभारत में अरबों का आक्रमण का मुख्य उद्देश्य 'धन' लूटना व इस्लाम धर्म का प्रचार - प्रसार ' करना था।10 वीं शताब्दी में गजनी का राज्य जब मोहम्मद गजनी के हाथ में आया तो उसने भारत पर सफल आक्रमण 1001 ईस्वी में किया।मोहम्मद गजनी ने भारत पर लगभग 17 बार आक्रमण किया।

मोहम्मद गजनी ने 1008 ईस्वी में मूर्तिवाद के विरुद्ध नगरकोट में आक्रमण किया।मोहम्मद गजनी ने मथुरा , कन्नौज , ग्वालियर , सौराष्ट्र , बनारस आदि मंदिरों को भी लूटा।उसका सबसे चर्चित आक्रमण 1024 ईस्वी में सौराष्ट्र ' सोमनाथ मंदिर ' पर हुआ और नगरों को पददलित किया। 11 वीं 12 वीं शताब्दी में राजाओं में एकता का अभाव था अतः गजनी में तुर्कों को समाप्त कर मोहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। मोहम्मद गोरी एक कट्टर मुसलमान शासक था।उसने भारत पर प्रथम आक्रमण 1175 ईस्वी में किया।दूसरा आक्रमण 1178 ईस्वी में गुजरात पर किया यहां का शासक भी बुरी तरह पराजित हुआ।1192 में पृथ्वीराज को भी पराजित किया और मुसलमानों का राज्य स्थापित किया।इसका कारण था कि राजपूत में परस्पर फूट व पड़ोसी राज्यों के प्रति ईर्ष्या द्वेष।इस प्रकार संपूर्ण भारत में हिंदुओं की सत्ता समाप्त हो गई और मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गयाईशा की आठवीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक राजनीतिक दृष्टि से हिंदू की राज्यसत्ता" शनै-शनै समाप्त हो गई " और इस्लाम सत्ता धीरे-धीरे उदय होता गया।विदेशियों का आक्रमण पश्चिमी उत्तर मध्य भारत पर हुआ जिसका प्रभाव यहां की साहित्य पर भी पड़ा और साहित्य में उसका वर्णन हो पाया हम्मीर रासो, विजयपाल रासो, पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो आदि ग्रंथ इसके प्रमाण है।

बोध प्रश्न

1. आदिकालभारतमें किनके बीच सत्ता संघर्ष हो रहा था ?
2. मोहम्मद गजनी कौन था ? उसने भारत पर कितनी बार आक्रमण किया ?
3. पृथ्वीराज चौहान कौन थे ? गोरी से उन्होंने कितनी बार युद्ध लड़ा ?

2.3.3 धार्मिक परिस्थितियाँ

तत्कालीन समाज में धार्मिक परिस्थितियाँ भी अराजकता से परिपूर्ण थीं। बहुत सारे धार्मिक मत हो गए। सब आगे बढ़ने की होड़ में आपस में टकरा रहे थे इस समय वैदिक धर्म के साथ ही साथ जैन धर्म, बौद्ध धर्म, तांत्रिक मत सिद्ध, नाथ पंथ, शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदायों का प्रचलन था। इनकी परस्पर प्रतिद्वंदिता के कारण सामान्य जनता भटकाव व भ्रम की स्थिति में थी। अतः राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास होता जा रहा था इस युग के कवियों ने इसी मानसिक स्थिति के अनुरूप खंडन-मंडन, हठयोग, वीरता और श्रृगार आदि का काव्य लिखा। आदिकाल में अनेक प्रकार के धार्मिक मतों अंतरों का अस्तित्व था। भारतीय धर्म साधना में उथलपुथल मची - साथ बौद्ध धर्म एवं जैन-हुई थी वैदिक एवं पौराणिक धर्म के साथधर्म भी इस काल में अपना प्रभाव जमाने के लिए प्रयासरत थी। राजपूत राजा जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म मैं विश्वास करते थे। उन पर सहमत का प्रभाव अधिक था। गढ़वाल के राजा स्मार्थ मत स्वालंबी थे, मालवा नरेश वैदिक धर्म के अनुयाई थे। तथा कलचुरी नरेश सब धर्मावलंबी थे वस्तुतः समस्त उत्तर भारत में धीरेधीरे स्वयं मत बौद्धों एवं स्मारकों के- प्रभाव को ग्रहण करता हुआ एक रूप नाथ संप्रदाय के रूप में विकसित हो रहा था।

आदिकाल में धार्मिक दृष्टि से तीन संप्रदायों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है शुद्ध संप्रदाय नाथ संप्रदाय जैन संप्रदाय बौद्ध धर्म कालांतर में विकृत होकर वज्रयान बन गया था। इन वज्रयान नियों को ही सिद्ध कहते थे। धर्म कि यहां विकृत अवस्था थी धर्म के वास्तविक आदर्शों के स्थान पर आचार्य हीनता चमत्कार प्रदर्शन एवं भोग विलास को प्रमुखता मिल गई थी सिद्धों का प्रभाव प्रभाव विभिन्न वर्ग के अशिक्षित जनता पर अधिक था वे तंत्र मंत्र जादू टोना एवं चमत्कार प्रदर्शन द्वारा सामान्य जनता में अपना प्रभाव जमा रहे थे।विक्रमी की 12 वीं शताब्दी में बहुत सिद्धों की प्रतिक्रिया स्वरूप नाथ संप्रदाय का उदय हुआ जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर परम सत्ता का साक्षात्कार घाट यह ह्रदय के भीतर किया जा सकता है। नाथ पंथ के प्रवर्तक गोरखनाथ ने इसी का प्रचार प्रसार किया नाथ पंथ में भोग पर विशेष बल दिया गया है साथ ही वर्ण व्यवस्था का विरोध एवं वार्ड नंबरों का खंडन किया गया है।

भारत के पश्चिमी प्रदेशों उसेस कर गुजरात में जनमत का बहुत अधिक प्रचार था जैन मुनि धार्मिक तत्वों का निरूपण अपभ्रंश भाषामें कर रहे थे स्वयंभू पुष्पदंत हेमचंद्र धनपाल जैसे अनेक कवियों ने अपनी रचनाएं जैन राजाओं के संरक्षण में लिखी बौद्ध धर्म की विकृति का प्रभाव जैन धर्म पर भी पढ़ रहा था और यहां भी अपने आदर्शों से दूर हट रहा था। बौद्ध और जैन धर्म में आई विकृति से वैदिक एवं पौराणिक धर्म में भी विकृति आ गई थी वैष्णो के 5 रात्र शवों के पास ऊपर और सांसों के त्रिपुर सुंदरी संप्रदायों में बौद्ध धर्म की पूजा पद्धति एवं वामा 4 का प्रभाव परिलक्षित हो रहा था कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इस काल में

विभिन्न धर्मों के मूल रूप लुप्त हो चले थे और उनमें विकृतियों का समावेश हो गया था। जनता के समक्ष अनेक धार्मिक राय बनती जा रही थी इस देशव्यापी धार्मिक अशांति के समय इस्लाम धर्म भी भारत के द्वार खटखटा रहा था यद्यपि भारत में मुसलमानों का आगमन हो चुका था किंतु इस्लाम धर्म भी अपने जड़े नहीं जमा पाया था।इन धार्मिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में यह कहना समीचीन है कि धार्मिक दृष्टि से आदिकाल का वातावरण अत्यंत दोषी था जनता असंतोष एवं भ्रम से ग्रस्त थी आदिकालीन साहित्य में इसी मानसिकता के अनुरूप खंडन मंडन हठयोग वीरता और श्रृंगार प्रयोग रचनाओं का देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न

1 . धार्मिक दृष्टि से आदिकालीन समाज की क्या दशा थी ?

2. नाथ संप्रदाय क्या है ? समाज के एकत्रीकरण में इसकी क्या भूमिका है ?

3. सिद्ध साहित्य हिन्दू धर्म के किस संप्रदाय का साहित्य है ?

2.3.3 साहित्यिक परिस्थितियाँ

साहित्यिक परिस्थितियाँ अधिकार में साहित्य रचना की तीन धाराएं भराई थी या तीन धाराएं थी एक और तो परंपरागत संस्कृत साहित्य की रचना हो रही थी तो वहीं दूसरी ओर प्राकृत अपभ्रंश भाषा में साहित्य के सृजन कवियों के द्वारा किया जा रहा था और तीसरी धारा हिंदी में लिखे जाने वाले साहित्य की थी।इस काल में संस्कृत के अंतर्गत पुराणों एवं एवं स्मृतियों पर टिका ही लिखी गई थी ज्योतिष एवं काव्यशास्त्र पर अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना की गई थी नववी से 11वीं शती तक कन्नौज एवं कश्मीर संस्कृत साहित्य के केंद्र रहे हैं। इस काल में अपभ्रंश प्रमुखता धर्म की भाषा बन गई थी। जैन कवियों ने गुजरात में रहकर अनेक पुराणों को अपभ्रंश में नए रूपों में प्रस्तुत किया स्वयंभू पुष्पदंत धनपाल हेमचंद्र जैसे जेन कवियों ने साहित्य प्रस्तुत किया जो अपनी मौलिकता एवं साहित्यिक ता के कारण उच्च कोटि का है। देश भाषा हिंदी में भी जनता की मानसिक एवं भावात्मक दिशाओं की अभिव्यक्ति एक वर्ग कर रहा था। जिसे भांट या चारण कवि कहा गया चरण कवियों की सामाजिक आवश्यकता पर बल देते हुए अचा रामचंद्र ने लिखा उस समय जो भाट या चारण किसी राजा के पास पराक्रम विजय शत्रुघ्न हरण का अतिथि पूर्णा आलाप करता या क्षेत्रों में जाकर वीरों के हृदय में उत्साह क्यों मरा करता था। वही सम्मान पाता थानिरंतर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने वाले 1 वर्ग की आवश्यकता चारण इसी श्रेणी के कवि थे जिस प्रकार यूरोप में वीर गाथाओं का विषय युद्ध और प्रेम रहा है इसी प्रकार इन रचनाओं में भव्य एवं संघर्षों की प्रधानता रही है हिंदी भाषा में रचित काव्य ग्रंथों में एक और तो अपने आधा गांव के अतिशय उक्त पूर्ण प्रशंसा की गई है तो दूसरी ओर युद्ध को व्यक्त करने वाली घटनाओं की योजना भी की गई है।

बोध प्रश्न

1 . आदिकालीन साहित्य की कितनी धाराएँ थीं?

2. आदिकालीनसाहित्य की भाषा कैसी है ?

3. आदिकालीन साहित्य का मुख्या प्रतिपाध्य क्या है ?

2.4 आदिकालीन साहित्य

किसीभी काल के साहित्य पर अपने समय और समाज का गहरा प्रभाव पड़ता है। आदिकालीनमें समाज में जो वैविध्य था वह साहित्य में भी हमें इसी कारण दिखाई पड़ता है। एक तरफ संस्कृत साहित्य रचा जा रहा था तो वहीं दूसरी तरफ प्राकृत और अपभ्रंश में भी खूब साहित्य लिखा रचा जा रहा था। इन दो धाराओं के इतर एक तीसरी धारा भी थी जहाँ हिंदी में साहित्य रचा जा रहा था। यह साहित्य पूरी तरह से लौकिक थी आदिकालीन साहित्य पर चर्चा करते हुए हम सबसे पहले रासो साहित्य की चर्चा करेंगे।

2.4.1 रासो साहित्य

आदिकाल में प्रचुर मात्रा में लौकिक साहित्य लिखा गया। लौकिक साहित्य में भी सर्वाधिक मत्त्वा की रचनाएँ वीरगाथा साहित्य की हैं, जिसे रासो साहित्य भी कहते हैं। ये रचनाएँ पुराणी हिंदी में लिखी गयीं जिस समय यह साहित्य लिखा जा रहा था, उस समय भाषा केस्तर पर दो साहित्य लिखे जा रहे थे। डिंगल और पिंगल। आदिकालीन रासो साहित्य पिंगल में लिखे गए परन्तु युद्ध वर्णन में कई स्थानों पर पिंगल का भी प्रयोग मिलता है। आदिकाल में भाषा काव्य के अंतर्गत 'रासो' संज्ञक प्रबंधकाव्यों की एक परम्परा मिलाती है, इसके पूर्व अपभ्रंश में भी रास, रासक और रासा नाम से चरितकाव्यों तथा कथाकाव्यों की परम्परा मिलाती है। विद्वानों में रासो शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ को लेकर मतान्तर है, जिसकी थोड़ी चर्चा यहाँ समीचीन है। गार्सा-द-तासी ने इस शब्द का सम्बन्ध 'राजसूय' शब्द से जोड़ा। राजसूय यज्ञ राजाओं में अपने प्रभुत्व के प्रमाण हेतु किये जाते थे। परन्तु रासो संज्ञक रचनाओं में सर्वत्र यह प्रसंग नहीं मिलता है। अतः यह व्युत्पत्ति कल्पना आधारित ही है। रामचंद्र शुक्ल ने इसकी व्युत्पत्ति 'रसायन' शब्द से मानी है। शुक्ल जी का अनुमान 'बीसलदेव रासो' के प्रारम्भ मेंही आये 'नाल्ह रसायण भणइ' पर आधारित है। वस्तुतः उस प्रसंग में कवि ने 'रसायण' शब्द का प्रयोग किया है। कुछ विद्वान इसी प्रकार 'रहस्य' शब्द से इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं ।

वस्तुतः रासो शब्द का विकास रासक या रासा शब्दों से हुआ प्रतीत होता है। 'रासक' एक उपरूपक है जिसमें नृत्यगान का विशेष योग होता था। डॉ. दरस शर्मा के अनुसार 'रासो' मूलतः गानायुक्त नृत्य विशेष के लिए प्रयुक्त होता था। उसीसे क्रमशः विकसित होते हुए उपरूपक और उपरूपक से वीररस के पद्यात्मक प्रबंधों में विक्सित हो गया। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भी अपने कथन में लगभग इसी मत की स्थापना की है। उनके अनुसार "हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में रासक को गेयरूपक माना है। गेयरूपक तीन प्रकार के होते थे- गेयरूपक तीन प्रकार के होते थे मसृण अर्थात कोमल, उद्धत और मिश्र। रासक प्रारम्भ में एक उद्धत-प्रयोग-प्रधान गेय रूपक को कहते थे, जिसमें थोड़ा बहुत मसृण के प्रयोग भी मिले होते थे। यह मसृणोद्धत ढंग का गेय

रूपक था ।संदेश रासक इसी प्रकार का रूपक है। यह मसृण अधिक है। पृथ्वीराज रासो यदि सचमुच ही पृथ्वीराज के काल में लिखा गया था तो उसमें रासक काव्य। के कुछ न कुछ लक्षण अवश्य रहे होंगे। संदेश रासक का जिस ढंग से प्रारंभ हुआ है उसी ढंग से रासो का भी प्रारम्भ हुआ है। जिस प्रकार विलास नाम देकर चरित काव्य लिखे गए, उसी प्रकार रासो या रासक नाम देकर ही चरित काव्य लिखे गए। पृथ्वीराज रासो में कथाकाव्यों के लक्षण भी मिल जाते हैं और रासक रूप के भी कुछ चिन्ह प्राप्त हो जाते हैं। गीतनृत्य के लिए रास शब्द का प्रयोग श्रीमद्भागवत में तो हुआ ही है, आज भी उत्तर भारत में राधा-कृष्णा की गानमय लीलाओं का अभिनय करने वाली रास-मंडलियाँ प्रचलित हैं। भारत के महारास में नृत्य के साथ गीत के संयोग का स्पष्ट उल्लेखकिया गया है। 12वीसड़ी के जैन ग्रन्थ'लगुडरास' और'तालाराम' के प्रचलन की सूचना देते हैं। इनसे पता चलता है कि ये नृत्यगीत श्रृंगारपरक थे। आचार्य चन्द्रबली पांडे भी 'रासो' शब्द का विकास संस्कृत 'रासक' शब्द से ही मानते हैं। यही मत उपयुक्त भी प्रतीत होता है।

चरित काव्य प्रधान ऐसी रचनाओं के लिए रासो (रासउ) या रास दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है। श्री नरोत्तम स्वामी ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'रास' मूलतः प्रेमकाव्यों के लिए प्रयुक्त होता रहा है। बीसलदेव रासो का डॉ. माता प्रसाद गुप्त सम्पादित संस्करण 'बीसलदेव रास' नाम से ही प्रकाशित है। 'रासो' वीरकाव्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है, जैसे पृथ्वीराज रासो। डॉ. माताप्रसादगुप्त ने 'रासउ' ही मिलता है। वैसे रासो और रासउ में कोई भेद नहीं है।

डिंगल और पिंगल दोनों में ही राजस्थान में रास या रासो काव्य परंपरा मध्ययुग से लेकर आधुनिक युग तक चलती रही है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार 'खानेश रास' और उपदेश रसायन रास को छोड़कर परवर्तीकाल के प्रायः सभी डिंगल-पिंगल रास या रासो ग्रन्थ चरित काव्य हैं। इन रचनाओं के सन्दर्भ में ऐतिहासिकता और अनैतिहासिकता का सवाल भी प्रायः उठता रहता है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने स्वसम्पादित 'पृथ्वीराज रास' की भूमिका में रासोकाव्य परंपरा का उल्लेख करते हुए ऐसी रचनाओं को दो भागों में विभाजित किया है - 1. नृत्यगीतपरक२. छंद-वैविध्यपरक। डॉ. गुप्ता के विवरणानुसार रासो काव्यों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

2.4.1.1 नृत्यगीतपरक रासोकाव्य

इस परंपरा के प्रमुख ग्रंथों का परिचय नामांकित है –

1. उपदेश रसायन रास -

इस धारा की यह प्राचीनतम उपलब्ध कृति है। इसके लेखक जिनदत्त सूरी हैं। अनुमानतः यह रचना वि. सं. 1200 के आस-पास की है। इसकी भाषा अपभ्रंश है। इसमें दोहा-चौपाई में धर्म के तत्त्व का विवेचन है। इसमें काव्यतत्व का सर्वथा अभाव है। उपदेश की प्रधानता है।

2. भरतेश्वर बाहुबली रास-

इस रचना के लेखक शालिभद्र सूरि हैं। इसका रचनाकाल सं. 1२४1 वि. है। इसमें ऋषभदेव के दो पुत्रों- भरतेश्वर और बाहुबली का राजसत्ता के लिए संघर्ष वर्णित है। इसकी कथा २०३ छंदों में समाप्त होती है। इसमें वीररस की प्रधानता है। रास संज्ञक रचनाएँ अधिकांशतः श्रृंगार-प्रधान हैं पर यह रचना अपवाद है।

3. बुद्धि रास-

यह भी शालिभद्र सूरि की रचना है। इसका रचनाकाल अज्ञात है परन्तु यह भी 'भरतेश्वर बाहुबली रास' के रचनाकाल सं. 1२४० वि. के आसपास की रचना होनी चाहिए। इस रचना में धर्मोपदेश की प्रधानता है। इसमें कुल ६३ चाँद हैं। रास की दृष्टि से इसे 'कोमल' रासक माना जाता है।

4. जीवदया रास -

इसके लेखक अगसु हैं। रचनाकाल 1२५७ वि. है। जीवों के ऊपर दया का उपदेश इस रचना का मुख्या विषय है। इसमेंकरुण रस की प्रधानता है तथा इसे भी कोमल रास माना जाता है।

5. चन्दनबाला रास –

इसके लेखक भी आगसू हैं। अनुमानतः यह भी सं. 1 २५७ वि. के आस-पास की रचना है। चंदनबाला की धार्मिक कथा की अभिव्यक्ति इस रचना में की गयी है। इसमें कुल ३५ चाँद हैं। करुण और शोक रस में इसकी परिणति हुई है। अतः यह भी कोमल रास के अंतर्गत ही आती है।

6. जम्बूस्वामीरासा-

इसके रचयिता धर्मसूरि हैं। रचनाकाल 1२३६वि० है। जम्बू स्वामी के जीवन चरित का वर्णन इस रचना का उद्देश्य है। इस रचना को भी कोमल या मसृणरा सही माना जा सकता है।

7. रेवत गिरि रास-

इसके लेखक विजयसेन सूरि हैं। इसका रचनाकाल 1२८८ दि० के आसपास माना जाता है। इसमें गिरनार के जैन मंदिरों के जीर्णोद्धार की कथा कही गयी है। पूरी कथा ७२ छंदों में पूर्ण हुई है। यह भी एक मसृण रास है।

8. नेमिजिणंद रासो-

इसके रचनाकार माल्हण है। इसका रचनाकाल 1२८६वि० है। कोमल भाव प्रधान रचना है। यह रचना ५४ छंदों में समाप्त हुई है।

9. गयसुकुमाल रास-

यह देल्हण नामक लेखक की रचना है। अगर चंद ना हटा के अनुसार इसका रचना काल लग भग 1३००वि०है। यहकुल३४छंदों की रचना है, जिसमें गयमुकुमाल के धार्मिक जीवन चरित का वर्णन किया गया है।

10. सप्तक्षेत्रि रास-

इसके लेखक का नाम अभी अज्ञात है। इसका रचनाकाल 1३२७ वि० है। यह 11 छंदों की रचना है जिसमें जैन मत के सात क्षेत्र कहे जाने वाले विषयों का वर्णन है। ये सात क्षेत्र हैं-जिन मंदिर, जिन प्रतिमा, जैन साधु, जैन साध्वी, जैन श्रावक, जैन श्राविक और जैन तीर्थ।

11. पेथड रास -

यह पंडलिक नामक लेखक की रचना है जिसका रचनाकाल 1३६० वि० है। इसमें संघाधिपति पेयड के जीवन का वर्णन है। नृत्य के साथ गाए जाने के लिए इसकी रचना की गयी है। इसमें कुल ६५ छंद हैं।

13. कछुलिरास-

इसके रचयिता का नाम अज्ञातहै। रचनाकाल1 ३६३वि०है। इसमें एक जैन तीर्थ कछु लिका वर्णन है। इसका उद्देश्य धार्मिक है। इसमें कुल ३५ छंद हैं।

14. समरा रासो -

यह अंवदेव सूरि की रचना है। यह 1३७1 दि० के बाद की रचना मानी जाती है। इसमें कुल 11 छंद है तथा इसमें संघपति सगरा का जीवन-चरित वर्णित है।

15. बीसलदेवरासो-

यह नरपति नाल्ह कीर चना है।इसका रचनाकाल विवादग्रस्त है पर डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार यह 1४०० वि० के आसपास की रचना प्रतीत होती है । इसमें बीसलदेव यानी विग्रहराज चतुर्थ और राजयती के विवाह और विरहकालीन बारहमासा का ही मुख्य वर्णन है। रचना का पर्यवसान प्रवासी नायक से नायिका के मिलन में होता है। रचना पूर्णतः शृंगाररस प्रधान है। अतः मसृण या कोमल रास के अन्तर्गत है। इसके प्रामाणिक संस्करण में कुल 1२८ छंद हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि नृत्य गीतपरक उपलब्ध रासो रचनाओं में सभी जैन प्रबंध है। केवल बीसलदेव रास ही स्वतंत्र प्रेमप्रधान रचना है और अपने काव्यत्व में बेजोड़ है जिसका व्यापक प्रभाव परवर्ती हिन्दी प्रबंधकाव्यों पर भी देखा जा सकता है। अनुमान है कि ऐसी स्वतंत्र प्रेमपरक रासो काव्यों की परंपरा भी रही होगी जो अब प्राप्त नहीं है।

2.4.1.2 छंद-वैविध्यपरक रासोकाव्य

इस धारा के अन्तर्गत निम्नांकित प्रमुख रचनाएँ आती हैं जिनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है-

1. मुंज रास

यह रचना अपने पूर्णरूप में उपलब्ध नहीं है पर इसका उल्लेख हेमचन्द्र ने 'सिद्ध हैम' (सं०1 1६७) में इसके दो छंदों को उद्धृत करके किया है। अतः निश्चय ही यह उसके पूर्व की रचना है। प्रबंध चिन्तामणि, पुरातन-प्रबंध-संग्रह आदि में भी मुंज रास-प्रबंध नाम से इसका उल्लेख है तथा इसके छंद संगृहीत हैं। इस रचना में मुंज का कर्नाटक के राजा तैलप से हारना, उसके बंदीगृह में तैलप की बहन मृणालबती से उसका प्रेम होना, भागने की योजना बनाना, मृणालवती की सूचना से इस योजना का उद्घाटन गुंज का अपमान और हाथी से कुचलवा कर उसे मार डालने की कथा है। इसमें विविध छंदों का उपयोग हुआ होगा, उद्धृत छंदों के अनुसार यह प्रतीत होता है।

2. संदेश रासक

इसके रचनाकार अद्दहमाण (अब्दुल रहमान) हैं। कवि ने अपने को प्राकृतकाव्य और गीत के लिए प्रसिद्ध तन्तुवाय (जुलाहा) मीरसेन का पुत्र बताया है। यह रचना गोरी के आक्रमण के कुछ पूर्व की होगी, ऐसा मुनि जिन विजय का अनुमान है क्योंकि इसमें मुल्तान का वर्णन एक भव्य हिन्दूतीर्थ के रूप में हुआ है जिसे गोरी के आक्रमण ने ध्वंस कर दिया था। मुनि जी के अनुसार इसकी भाषा भी उसी काल की है। इसकी कथा विप्रलंभ शृंगारप्रधान है जिसका अंत बीसलदेव रास के समान मिलन में होता है। इसमें एक विरहिणी के विरह का षड्ऋतु वर्णन के रूप में बड़ा ही मार्मिक प्रभावशाली और काव्यमय वर्णन मिलता है। इसमें कुल २२३ छंद हैं। कुल २२ प्रकार के छंदों का इसमें प्रयोग हुआ है। यह भी मसृण वर्ग की रचना है।

3. पृथ्वीराज रासो

चंदबरदायी द्वारा लिखित यह प्रबंधकाव्य इस परंपरा का सबसे विशिष्ट महाकाव्य है। जिसमें वीर और शृंगार दोनों रसों का सम्यक्रि रूपण है तथा विविध छंदों का व्यापक प्रयोगहै। इसके रचनाकाल और मूल कथा-वस्तु दोनों के संबंध में विद्वानों में एकमत्त नहीं है।

4. हम्मीररासो-

इस रचना का पूर्ण रूप अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है, केवल कुछ उद्धृत छंद ही मिलते हैं। नाम से प्रतीत होता है कि राजा हम्मीर देव के जीवन पर आधारित काव्य है। अनुमानतः 1४1 ५वीं

शताब्दी की रचना है। यह एक वीररसपरक रचना है। 'हम्मीर रासो' नाम की एक रचना जोधराम की है जिसका रचनाकाल 1 ७८५ वि० है। एक अन्य 'हम्मीर रासो महेशकवि का है जो और बाद का है। इसमें ६०० छंद हैं।

5. **बुद्धि रासो-**

यह चंदबरदायी के पुत्र कहे जाने वाले कवि जल्हण की रचना है। यह एक प्रेमप्रधान रचना है जिसमें चंपावती नगरी के राजकुमार और जलधितरंगिणी के की प्रेम, विरह और मिलन की कथा है। इसमें कुल 1४० छंद हैं।

6. **परमाल रासो-**

इसका जो रूप प्राप्त है वह 'पृथ्वीराज रासो' के वृहद संस्करण में प्रक्षिप्त 'महोबाखंड' के रूप में था जिसे डॉ. श्यामसुन्दर दास ने अलग करके स्वतंत्र पुस्तक का रूप दिया। इसके रचयिता, रचनाकाल तथा इसके मूलरूप सभी का अभी अनिश्चय है ।

7. **विजयपाल रासो-**

इसके रचयिता नल्ह सिंह भाट हैं। अनुमानतः इसका रचनाकाल 1६०७वि० है। इसमें राजा विजयपाल की दिग्विजय का काव्यमय वर्णन है। इसमें वीररस की प्रधानता है। इस रचना का पूर्णरूप प्राप्त नहीं हुआ है। अभी इसके केवल ४२ छंद मिले हैं ।

8. **खुमाण रासो-**

इसके रचयिता दलपति विजय हैं। इसके रचनाकाल के संबंध में 1७वीं शताब्दी का अनुमान किया गया है। इसमें मेवाड़ के खुमाण या सूर्यवंश की श्रेष्ठता का वर्णन किया गयाहै। काव्य की दृष्टि से यह रचना भावप्रवण हैं।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त छंद वैविध्यपूर्ण रचनाओं के अन्तर्गत राउ जैतसी रो रासो (1 ६०० वि०), दयाल कवि कृत राणा रासो (1 ६७५ वि०), कुम्भकर्ण कृत रतन रासो (1 ६७५ वि०), जानकवि कृत कायम रासो (1 ६६1 वि०), राव डूंगरसी कृत छत्रसाल रासो (1 ७1 ० वि०), गुलाबकवि का कहरिया को रासो (1 ८३४ वि०), अलि रसिक गोविन्द कृत कलियुग रासो (1 ८६५ वि०) आदि कई रचनाएँ आती हैं।

बोध प्रश्न

1.रासो साहित्य से आप क्या समझते हैं?

2. रासो काव्य परंपरा को कितने भागों में बांटा गया है ?

3.रासो शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई ?

2.4.2 नाथ साहित्य

महायोगी गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। जब भारतीय धर्मसाधना अपने कठिन समय से गुजर रही थे तब गुरु गोरखनाथ ने भारतीय धर्म दर्शन और जीवन को पुनर्स्थापित करने का संकल्प लिया। नाथों की संख्या नौ मानी जाती है। नाथ संप्रदाय में ऐसी मान्यता है कि भगवान् शंकर ही इस सम्प्रदाय के आदि नाथ हैं। नो नाथो में मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, गहिनीनाथ ,जालंधर नाथ, कानिफनाथ ,भरतरी नाथ ,रेवन नाथ तथा नागनाथ का नाम उल्लेख में मिलता है। नाथ अंत में भी 84 सिद्ध कहे जाते हैं। इस पंथ को गोरक्ष पंथ योग संप्रदाय अवधूत संप्रदाय आदि नामों से जाना जाता है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में नाथ पंथ का विशेष महत्व है। जब भारत की धर्म साधना का रक्त भिन्न भिन्न कारणों से या तो क्षतिग्रस्त हो रहा था या तो पाखंड आडंबर और ढूंढ के दलदल में धंसा जा रहा था। उस समय गोरखनाथ ने ऐसी विद्रूपता ओं में फंसे भारतीय समाज को उस कठिन परिस्थिति से बाहर निकालने का संकल्प किया उन्होंने रूम पाखंड के बजाय सामाजिक समरसता योग सदाचार सम्यक जीवन आज को महत्व दिया। गोरखनाथ इस परंपरा के सर्वप्रथम आचार्य और सिद्ध मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य माने जाते हैं। मछिंद्रनाथ कौल साधक थे कॉल साधना में साधक का प्रधान कर्तव्य जीवन शक्ति को जागृत करना है। जो जगत में व्याप्त है और जो कुंडली के रूप में मनुष्य के शरीर में स्थित है नाथ पंछियों को कंफर्टा योगी भी कहा जाता है। गोरखनाथ द्वारा चलाया गया यह संप्रदाय जाति प्रथा मूर्ति पूजा आदि का तीखा खंडन करता था। हठयोग पर बल देता था। हठयोगियों के सिद्ध सिद्धांत पद्धती ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। इन दोनों के योग को ही हठयोग कहते हैं। यह हठयोग की साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके सुनने में समाधि लगा ब्रह्मा का साक्षात्कार किया करते थे। आगे आने वाली निर्गुण काव्यधारा के संत कवियों और सूफी काव्य दोनों पर ही इस नाथ पंथ के स्पष्ट प्रभाव को देखा जा सकता है।

गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यापक स्तर परसमाज को सन्देश देने का काम किया। गोरखनाथ द्वारा रचे ग्रंथों की संख्या चालीस मानी गयी है परन्तु प्रमाणिक तौर पर पीताम्बर दत्त बडथ्वाल ने केवल चौदह ग्रंथों को ही प्रमाणिक माना है। उन्होंने इसे हिन्दी साहित्य सम्मलेन से गोरखबाणी नाम से सम्पादित किया। नाथपंथी कवियों में चौरंगीनाथ, गोपीनाथ, भरथरी, जलान्धीपाव, चणकर्नाट आदि प्रसिद्ध हैं। नाथपंथियों की भाषा पुरानी पश्चिमी हिंदी की बोलियों के एक मिश्रित रूप में थी। जिसने आगे चलकर सन्त साहित्य की भाषा की नींव डाली।

बोध प्रश्न

1 . हिन्दू धर्म की पुनर्स्थापना में नाथ संप्रदाय और नाथ साहित्य का क्या महत्त्व है ?

2. नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक कौन थे ?

3. नाथ साहित्य की भाषा कौन सी है ?

2.4.3 जैन साहित्य

जैनसाहित्य अपभ्रंश से निकली हुई प्राचीन हिन्दी में है। इस अशीत्या का समय ८वी शताब्दी माना जाता है। इस साहित्य का महत्त्व धार्मिक महत्त्व के अतिरिक्त भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी अधिक है। जैन साहित्य में सर्वप्रथम स्वयंभू जो ७८३ ई. के आस-पास विद्यमान थे। स्वयंभू ने जैन साहित्य का रामायण कहे जाने वाले पउमचरिउ की रचना की। स्वयंभू अत्यंत उच्चा कोटि के कवि थे। मन की विविध दशाओं के उन्होंने बहुत ही सुन्दर वर्णन किये हैं। श्रावाकाचार के रचयिता देवसेन भी जैन साहित्य के महत्त्वपूर्ण साहित्यकार माने गए हैं। उन्होंनेदर्शानसारनामक ग्रन्थ भी लिखा। इसके अतिरिक्त इस धारा के प्रमुख रचनाकारों में पुष्पदंत, धनपाल, शारंगधर, सोमप्रभसूरि, शालिभद्रसूरि (भरतेश्वरबाहुबलीरास), आसगु, चंद्रमुनि, योगचंद्र, हेमचंद्र, मेरुतुंग आदि का नाम आता है। इस समय की विख्यात कृतियों में हेमचन्द्र का शब्दानुशासन, पुष्पदंत का महापुराण, और मेरुतुंग कृत प्रबंधचिंतामणि अग्रगणी है। जैन साहित्य मुख्यतः काव्य और व्याकरण से सम्बद्ध है। इसमें शास्त्र, जप-तप, मूर्तिपूजा आदि का खंडन तथा आत्मसंयम, अहिंसा, गुरु माहात्म्य आदि का विधान किया गया है। जैन साहित्य बहुत विशाल है।

अधिकांश में वह धार्मिक साहित्य ही है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में यह साहित्य लिखा गया है। भगवान महावीर स्वामी की प्रवृत्तियों का केंद्र मगध रहा है, इसलिये उन्होंने यहाँ की लोकभाषा अर्ध मागधी में अपना उपदेश दिया जो उपलब्ध जैन आगमों में सुरक्षित है। ये आगम ४५ हैं और इन्हें श्वेतांबर जैन प्रमाण मानते हैं, दिगंबर जैन नहीं। दिंगबरों के अनुसार आगम साहित्य कालदोष से विच्छिन्न हो गया है। दिगंबर षट्खंडागम को स्वीकार करते हैं जो 12वें अंगदृष्टिवाद का अंश माना गया है। दिगंबरों के प्राचीन साहित्य की भाषा शौरसेनी है। आगे चलकर अपभ्रंश तथा अपभ्रंश की उत्तरकालीन लोकभाषाओं में जैन - पंडितों ने अपनी रचनाएँ लिखकर भाषा साहित्य को समृद्ध बनाया।

आदिकालीन साहित्य में जैन साहित्य के ग्रन्थ सर्वाधिक संख्या में और सबसे प्रमाणिक रूप में मिलते हैं। जैन रचनाकारों ने पुराण काव्य, चरित काव्य, कथा काव्य, रास काव्य आदि विविध प्रकार के ग्रंथ रचे। स्वयंभू, पुष्प दंत, आचार्य हेेमचंद्रजी, सोमप्रभ सूरीजीआदि मुख्य जैन कवि हैं। इन्होंने हिंदुओं में प्रचलित लोक कथाओं को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया और परंपरा से अलग उसकी परिणति अपने मतानुसार दिखाई। ईसा के पूर्व लगभग चौथी शताब्दी से लगाकर ईसवी सन् पाँचवी शताब्दी तक की भारतवर्ष की आर्थिक तथा सामाजिक दशा का चित्रण करने वाला यह साहित्य अनेक दृष्टियों से महत्त्व का है। आचारांग, सूयगडं, उत्तराध्ययन सूूत्र, दसवैकालिक आदि ग्रन्थों में जो जैन श्रमण के आचार-चर्या का विस्तृत वर्णन है, और डॉ. विण्टरनीज आदि के कथानानुसार वह श्रमण-काव्य (Ascetic poetry) का प्रतीक है। भाषा और विषय आदि की दृष्टि से जैन आगमों का यह भाग सबसे प्राचीन मालूम होता है।

भगवती कल्पसूत्र, ओवाइय, ठाणांग, निरयावलि आदि ग्रन्थों में श्रमण भगवान महावीर, उनकी चर्या, उनके उपदेशों तथा तत्कालीन राजा, राजकुमार और उनके युद्ध आदि का विस्तृत वर्णन है, जिससे जैन इतिहास की लुप्तप्राय अनेक अनुश्रुतियों का पता लगता है।

नायाधम्मकहा, उवासगदसा, अन्तगडदसा, अनुत्तरोववाइयदसा, विवागसुय आदि ग्रन्थों में महावीर स्वामीजी द्वारा कही हुई अनेक कथा-कहानियाँ तथा उनकी शिष्य-शिष्याओं का वर्णन है, जिसमें जैन परम्परा सम्बन्धी अनेक बातों का परिचय मिलता है। रायपणेसिय, जीवाभिगम, पन्नवणा आदि ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र, संगीत, वनस्पति आदि सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण विषयों का वर्णन है जो प्रायः अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता है।

छेदसूत्रों में साधुओं के आहार-विहार तथा प्रायश्चित आदि का विस्तृत वर्णन है, जिसकी तुलना बौद्धों के विनयपिटक से की सकती है। वृहत्कल्पसूत्र (1-50) में बताया गया है कि जब भगवान महावीर साकेत (अयोध्या) सुभुमिभाग नामक उद्यान में विहार करते थे तो उस समय उन्होंने अपने भिक्षु-भिक्षुणियों को साकेत के पूर्व में अंग-मगध तक दक्षइ के कौशाम्बी तक, तथा उत्तर में कुणाला (उत्तरोसल) तक विहार करने की अनुमति दी। इससे पता लगता है कि आरम्भ में जैन धर्म का प्रचार सीमित था, तथा जैन श्रमण मगध और उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों को छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकते थे। निस्सन्देह छेदसूत्रों का यह भाग उतना ही प्राचीन है जितने स्वयं महावीर।

तत्पश्चात राजा कनिष्क के समकालीन मथुरा के जैन शिलालेखों में भिन्न-भिन्न गण, कुल और शाखाओं का उल्लेख है, वह भद्रवाहु स्वामी के कल्पसूत्र में वर्णित गण, कुल और शाखाओं के साथ प्रायः मेल खाता है। इससे भी जैन आगम ग्रन्थों की प्रामाणिकता का पता चलता है। वस्तुतः इस समय तक जैन परम्परा में श्वेताम्बर और दिगम्बर का भेद नहीं मालूम होता। जैन आगमों के विषय, भाषा आदि में जो पालि वह भी इस साहित्य की प्राचीनता को द्योतित करती है।

पालि-सूत्रों की अट्ठकथाओं की तरह आगमों की भी अनेक टीका-टिप्पणियाँ, दीपिका, निवृत्ति, विवरण, अवचूरि आदि लिखी गयी हैं। इस साहित्य को सामान्यता निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका-इन चार विभागों में विभक्त किया जा सकता है, आगम को मिलाकर इसे 'पांचांगी' के नाम से कहते हैं। आगम साहित्य की तरह यह साहित्य भी बहुत महत्त्व का है। इसमें आगमों के विषय का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। इस साहित्य में अनेक अनुश्रुतियाँ सुरक्षित हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारभाष्य, निशीथचूर्णि, आवश्यकचूर्णि, आवश्यकटीका, उत्तराध्ययन टीका आदि टीका-ग्रन्थों में पुरातत्व सम्बन्धी विविध सामग्री भरी पड़ी है, जिससे भारत के रीति-रिवाज, मेले त्यौहार, साधु-सम्प्रदाय, दुष्काल, बाढ़, चोर-लुटेरे, सार्थवाह, व्यापार के मार्ग, शिल्प, कला, भोजन-शास्त्र, मकान, आभूषण, आदि विविध विषयों पर बहुत प्रकाश पड़ता है।

बोध प्रश्न :

1 . आदिकालीन साहित्य में जैन साहित्य का क्या महत्त्व है ?

2. आगम ग्रन्थ क्या हैं ?

3. जैन साहित्य पर किस धर्म की मान्यताओं और प्रवित्तियों का प्रभाव सर्वाधिक पढ़ा ?

2.4.4 सिद्ध साहित्य

सिद्ध कवियों के परम्परा बौद्ध धर्म के विकृत रूप की अंतर्गत आती है। बौद्ध धर्म का विकृत रूप वज्रयान सम्प्रदाय के रूप में विक्सित हुआ । आरम्भ में इसमें ऐसे देव का अस्तित्व माना गया है जो करुणा का आश्रय है, किन्तु बाद में करुणा का सिद्धान्त रूपढ़े बनकर रह गया और योगी के लिए वे सभी कर्म क्षम्य माने गये जिनमें रत होने से साथ रणजन नरक गामी होता है। सिद्धि प्राप्ति के अलावा वज्रयानी साधक असाधारण शक्तियों-वशीकरण आदि के लिए प्रयत्नशील होने लगे तथा पंचमकरादि-मत्स्य, मांस, मद्य, मुद्रा, मैथुन, को उचित बताने लगे। इनमें तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, गुल्य-साधना और कामाचारकी प्रधानता होने लगी। ये सिद्ध साधक बिहार से लेकर आसाम तक फैले हुए थे। इनका मुख्य केन्द्र विक्रमशिला एवं नालन्दा नामक प्रसिद्ध विद्यापीठों में था। जब बख्तियार खिलजी ने इन विद्यापीठों को नष्ट किया तब ये सिद्ध तितर-वितर हो गये। सिद्धों की भाषा संध्या-भाषा कही जाती है उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो सांकेतिक थी और उसके दुहरे अर्थ निकलते थे।

सिद्धों की रचनाओं में परमानन्द के अनुभव अर्थात सिद्धि महासुख की अनुभूति की झलक मिलती है। इस महासुख की प्राप्ति अविद्या से मुक्ति होने पर हो सकती है। करुणा और शून्य के मेल से निर्वाण प्राप्त होता है। योगी के सिर में सहस्त्रार कमल चक्र होता है। आनन्दावस्था में चित्त इसी चक्र में लीन होता है। इस अवस्था को महानिर्वाण कहते हैं। उनकी दृष्टि में भोगासक्ति निषिद्ध है, भोग नहीं सिद्धों ने वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, जाति-भेद, यज्ञ आदि को अनावश्यक मानते हुए परोपकार, दान, दया आदि का उदेश दिया है। राहुलसांकृत्यायन ने ८४ सिद्धों का उल्लेख किया है। जिनमें सिद्ध सरहपा से यह साहित्य आरम्भ होता है। इनमें- सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हया, कुक्कुरिपा, विरपा, गुण्डरिपा, तिलोपा, कामलिपा, मिहिण्डा, कंकणपाद, जयवापी, धामपा इत्यादि हैं। सिद्ध साहित्य को चर्यागीत और दोहा कोष में विभक्त किया गया है।

बोध प्रश्न

1 . सिद्ध कवि किस धार्मिक परंपरा के अतर्गत आते हैं ?

2.सिद्ध कवियों की संख्या कितनी मानी जाती हैं?

३.राहुल संकृत्यायन ने हिंदी का पहला कवि किसे माना?

2.4.5 अमीर खुसरो

अब्दुल हसन खुसरो (1२५४ ई०-1३२५ ई०) ने भारत में जन्म लिया। इनके पूर्वज कई पीढ़ी से भारतीय रंग में रँग चुके थे। इनकी माता भारतीय थी। ऐसी स्थिति में खुसरो को माता के स्तन्यपान और पालने में ही देश-प्रेम की भावना प्राप्त हुई थी। वे फारसी के एक सिद्धहस्त कवि और लेखक थे। उनके फारसी लेखों, काव्यों एवं समसामयिक इतिहासकारों के संदर्भ से हमें भलीभाँति ज्ञात होता है कि खुसरो को हिन्दुस्तान की हर चीज बड़ी प्यारी थी। वह यहाँ की प्राकृतिक सुषमा, यहाँ के पेड़ पौधों, यहाँ के पशु-पक्षियों, फलों से लेकर यहाँ के रस्मो-रिवाज,पर्व-त्योहार और धर्म-कर्म सभी के प्रति इतने आसक्त थे कि वे इनका वर्णन करते हुए नहीं अघाते थे।

अमीर खुसरो को भारतीय होने और भारत में जन्म लेने का बड़ा गर्व था। उनका यहाँ की भाषा के साथ ही इस धरती के प्रति बड़ा आत्मीय लगाव था। अपनी फारसी मसनवी 'देवलरानी और खिज्र खाँ' में वे कहते हैं कि भारत के प्रति उनका प्रेम कोई पक्षपातपूर्ण नहीं है, प्रत्युत अल्लाह ने स्वयं स्वर्ग से आदम और मोरपक्षी को इस देश में भेजकर इसे दुनिया के अन्य देशों से वरीयता प्रदान की है। हिन्दू धर्म के प्रति उनकी भावना का अनुमान हस्त - बहिस्त' में उद्धृत एक घटना से मिलता है कि एक मुसलमान सज्जन हज्ज को जा रहे थे। उन्हें मार्ग में एक हिन्दू भक्त मिला जो अपने शरीर से लोट लोट कर धरती नापता हुआ अपने पवित्र तीर्थ सोमनाथ की यात्रा पर जा रहा था। सड़क के पत्थरों ने उसके सीने को छलनी बना दिया था, ऐसा करने के सम्बन्ध में उसने उत्तर दिया कि उसने अपना जीवन मूर्ति को समर्पित कर दिया है, इसलिए वह इस प्रकार जा रहा है। इस घटना को उद्धृत करते हुए खुसरो अपने स्वधर्मियों से कहता है कि उसकी कर्मनिष्ठा और भावना को परखो तथा मूर्ति पूजा के पीछे जो प्रतीकात्मक व्यंजना है उसे समझो। इतना विशाल अन्तःकरण, इतनी उदारता और देशभक्ति जिस युगद्रष्टा महाकवि में थी उसका देश-भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण भी इसी पीठिका के साथ, उसके समूचे व्यक्तित्व के संदर्भ में समझने की आवश्यकता है।

अमीर खुसरो ने हिन्दुई या हिन्दी में रचनाएँ कीं, यह एक निर्विवाद तथ्य है। इसे वे भारत की बोलचाल की भाषा के नाते इज्जत की निगाह से देखते थे। अपने फारसी ग्रन्थों में भी कहीं-कहीं हिन्दी शब्दों का प्रयोग करना, उनकी एक खासियत थी। वेअपने बारे में कहते थे कि "मैं एक भारतीय तुर्क हूँ और बातों का जवाब हिन्दी में दे सकता हूँ। मेरे पास मिस्र देश का मधुसंचय नहीं है कि मैं अरब और अरबी की बात करूँ । वस्तुतः मैं एक भारतीय तोता हूँ। मुझसे हिन्दी में सवाल करो, मैं उसे मधुर ढंग से बोल सकता हूँ।" इन वाक्यों से भाषा सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण की जानकारी होती है। यह बात जग जाहिर है, खुसरो फारसी के एक कुशल कवि थे। उनकी काव्य प्रतिभा का वैभव उनके फारसी दीवानों में ही देखा जा सकता है। लेकिन उन्होंने देशी भाषाओं-खड़ी बोली और ब्रजभाषा में जो साधारण रचनायें लिखीं उनके बारे में भी असाधारण विचार

आलोचकों ने व्यक्त किये हैं। अहदी ने तजकिरे अरफ़ात में यहाँ तक लिख दिया है कि अमीर साहब का कलाम जिस कदर फारसी में है, उसी कदर ब्रजभाषा में है।

हिन्दी या हिन्दुई में कविता लिखने का उपक्रम महमूद गजनवी के भारत-आगमन के समय से पूर्व प्रारम्भ हो गया था। इतिहास लेखक फरिस्ता और निजामुद्दीन के साक्ष्य इस सम्बन्ध में उपलब्ध हैं। अमीर खुसरो से पूर्व मसूदी-साद बिन सलमान ने हिन्दुई में एक पूरा दीवान लिखा था, इसका भी उल्लेख प्राप्त होता है। खुसरो के समकालीन और परवर्ती सूफी साधकों फरीदुद्दीन शकरगंज, शरफुद्दीन एहिया मनेरी आदि ने खड़ी बोली में सुन्दर रचनायें प्रस्तुत कीं। खुसरो के लगभग एक सौ वर्ष बाद मुल्ला दाऊद ने अवधी में 'चंदायन' लिखी जो दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह तुगलक के मंत्री जौनाशाह के सम्मान में लिखी गई थी जिसे हिन्दी की एक सशक्त मसनवी का गौरव प्राप्त है। अब्दुर कादिर बदायूँनी ने इस मसनवी की भाषा हिन्दुई बताई है। वस्तुतः हिन्दी या हिन्दुई उस समय की सभी देशी भाषाओं की रचनाओं की एक सामूहिक अभिधा थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि अमीर साहब के समय तक हिन्दी कलाम चल निकला था। वह सूफी संतों के हाथ में था, जिनका मकसद अपने उपदेशों को जनता तक पहुँचाना था। अमीर खुसरो जैसे कुशल कवि के हाथों में पड़कर देशी भाषा की मौलिक मणियाँ चमक उठीं और उपदेश एवं साधना के धरातल को छोड़कर हिन्दी कविता सामाजिक संदर्भों में मुखर हो उठी।

भाषा और सामाजिक दृष्टि

खुसरो के नाम से अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सखुनें, चौपदें, गजलें और गीत प्रचलित हैं। लोकमुख की प्रवहमान परम्परा से चलते-चलते ये हम तक आये हैं। निस्सन्देह यह कहना कठिन है कि इसमें कितना मूल कवि-कृत है और कितना परवर्ती लोगों ने इसमें उसके नाम से जोड़ दिया है। जो खुसरो की रचनायें हैं वे भी इस लम्बी लोकयात्रा में कितनी अपने मूलरूप में तथा कवि प्रयुक्त भाषा - रूप में हैं, यह भी कहना कठिन ही है। फिर भी पाठालोचन के इस सिद्धान्त के आधार पर कियदि ये लेखक की प्रकृत रचनायें नहीं तो कम से कम उनके अवशेष तो हैं ही, हम उनके नाम पर उपलब्ध समस्त सामग्री के आधार पर उनकी मान्यताओं को उजागर करने की कोशिश करेंगे। खुसरो ने यह भली-भाँति समझ लिया था कि भाषा समाज की वस्तु होती है। वह समाज से अलग-थलग न की जा सकती है, न जीवंत हो सकती है और न ही जीवन के स्वर उसमें मुखरित हो सकते हैं। हिन्दी और संस्कृत भाषा के सम्बन्ध में उनके ख्यालात बड़े ऊँचे थे। इस सम्बन्ध में कहा गया है: "हिन्दी यानी संस्कृत जबान का जिक्र आता है तो कहते हैं कि यह फारसी जबान से कम नहीं है। अरबी के अलावा, जो तमाम जबानों पर फजीलत रखती है और तमाम जबानों पर इसको फौकियत हासिल है फारसी जबान में अरबी अल्फाज की बड़ी आमेजिश है। अरबी जबान में गैर जबान के अल्फाज नहीं हैं। इसी तरह हिन्दी जबान में किसी और जबान की आमेजिश नहीं।" इसीलिये वे अपने समय के शासकों की साहित्यिक भाषा फारसी के साथ हिन्दुई को चलन में लाना चाहते थे।

फारसी मसनवियों में हिन्दी शब्दों के प्रयोग के अलावा फारसी - हिन्दी कोष खालिकवारी का निर्माण तथा फारसी और हिन्दी की मिश्रित पदावली वाली रचनायें उनके इस सामाजिक दृष्टिकोण की परिचायिका हैं। उन्होंने शेर (फारसी) और गीत (हिन्दुई) को मिलाकर लिखने का प्रयोग किया जिसमें एक चरण फारसी शेर और दूसरा हिन्दी गीत का है। एक नमूना द्रष्टव्य है-

जे हाल मिस्कीं मकुन, तगाफुल, दुराय नैना बनाय बतियां।
किताबे हिजरां न दारम ऐ जां, न लेहु काहे लगाय छतियां॥
शबाने हिंजरां दराज चूं जुल्फ बरोजे वसलत चु उम्र कोताह।
सखी पिया को जो मैं न देखूं, तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां॥

इसी प्रकार की एक दूसरी प्रायोगिक रचना अमीर साहब के नाम से मिलती है जिसमें रचना का उद्देश्य भी झलक मारता है-

कस्का चूं दीदं बर्रखत गुफ्तम कि ये काबीत है।
गुफ्ता कि दुर हो बावरे इस शहर की यह रीत है॥
हमना- तुम्हन को दिल दिया तुम दिल लिया और दुख दिया।
हम यह किया तुम वह किया ऐसी भली यह मीत है॥
शादी के गुफ्ता रेखता दर देखता दुर रेखता।
सीरो शकर आमेख्ता हम शेर हैं हम गीत हैं॥

इस रचना में स्वयं कवि कहता है कि यह दुग्ध शर्करा मिश्रित मधुर पेय के समान शेर और गीत दोनों है। इससे साफ जाहिर है कि खुसरो भाषा को एक ऐसे धरातल पर लाना चाहते थे, जो न केवल शासकों और अमीरों के दिल बहलाव की चीज रहे, बल्कि वह साधारण जनता की थाती बन सकें। इसमें उनकी उस दूरदृष्टि का भी परिचयमिलता है जिसमें भारत के निवासी हिन्दुओं और बाहर से आई इस्लाम धर्मावलम्बी जातियों के भावनात्मक ऐक्य की भूमिका भी विद्यमान थी।

पहेलियाँ

अमीर साहब ने भाषा में सबसे अधिक पहेलियों की रचना की थी। वास्तव में पहेली और खुसरो ये दोनों चीजें हिन्दी में जैसे एक ही अर्थ की द्योतक हो गई हैं। यही वजह है कि जिस किसी ने कोई पहेली बनाई यदि उसमें उसके नाम की छाप नहीं है तो वह खुसरो की मान ली गयी और बहुतों ने तो स्वयं पहेलियों को रच रच कर उनमें खुसरो नाम की छाप लगा देने तक की उदारता भी की। वैसे तो इन पहेलियों में बात की करामात और शब्दचातुर्य की प्रधानता है और इनके लिखने का उद्देश्य भी शायद यही रहा होगा पर इनमें तत्कालीन सामाजिक जीवन की भंगिमायें भी पर्याप्त अभिव्यंजित हो उठी हैं। अपने के नाम से जानते हैं, हिन्दी विशेषतः आज की खड़ी बोली हिन्दी के प्रवर्तक कवि थे। उन्होंने संस्कृत में विद्यमान प्रहेलिका साहित्य की विरासत

अपनी पहेलियों के रूप में हिन्दी को प्रदान किया। उनकी पहेलियाँ भाषा की बहुविध अर्थ-व्यंजकता से परिपुष्ट, चुटीले, सामाजिक व्यंग्य एवं विनोद की क्षमता से परिपूर्ण और देशी-विदेशी कई भाषाओं के शब्दार्थ से युक्त, गम्भीर संकेतों को प्रस्तुत करने में समर्थ तो हैं ही साथ ही उनमें भारत के सामाजिक जीवन के अनेक पहलू उद्घाटित हो उठे हैं। सभी पहेलियाँ किसी-न-किसी रूप में तत्कालीन समाज में नारी, उनके दाम्पत्य सम्बन्ध, प्रेम सम्बन्ध आदि को व्यक्त करती हैं, यद्यपि यह उनका व्यक्त अर्थ होता है क्योंकि प्रतिपाद्य अर्थ तो उनमें उस वस्तु पर घटित होने वाली व्यंजना का ही रहता है जिनका संकेत पहेलियों में छिपा रहता है। फिर भी नारी-जीवन के वैवाहिक और प्रेम सम्बन्धी सामाजिक सन्दर्भों को तो ये प्रचुर मात्रा में उद्घाटित करती ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है। इसके साथ ही उपर्युक्त विवेचन में देखा जा चुका है कि शृंगार-प्रसाधनों, आमोद-प्रमोद, खान-पान आदि से लेकर जीवनगत व्यवहार और दैनिक प्रयोग की ग्राम्य वस्तुओं तक के गहरे सामाजिक सन्दर्भ इन छोटी-छोटी पहेलियों में मुखर हो उठे हैं। दो पंक्तियों की ये पहेलियाँ बिहारी के दोहों के समान देखने में छोटी होते हुए भी गम्भीर घाव करती हैं।

अमीर खुसरो की हिन्दी कविताएँ और उनकी 'नूह सिपहर' जैसी मसनवियों में उनका व्यक्तित्व एक सच्चे भारतीय का व्यक्तित्व है पर 'खजायनतुल फुतूह' जैसे इतिहास ग्रंथ में वह कट्टरता और साम्प्रदायिक उन्माद का समर्थक है। कवि खुसरो और इतिहासकार खुसरो में बड़ा अन्तर है और वह अन्तर इतना अधिक है कि यकीन ही नहीं होता कि ये दोनों व्यक्ति एक ही हैं।

बोध प्रश्न

1 . अमीर खुसरो को पूरा नाम क्या था ?
2. अमीर खुसरो ने किस भाषा में अपनी रचनाएँ कीं?
3. खुसरोकी प्रमुख रचनाएँ कौन कौन सी हैं ?

2.5 आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ

हिन्दी-साहित्य के प्रारंभ के युग में एक ओर भाषा अपभ्रंश के अन्तिम रूप से अपने नवीन रूप को प्राप्त कर रही थी। 'सब जन मिट्ठा देसिल बयना' की अभिधा अवहट्ट से हट कर लोक की एक दूसरी भाषा को प्राप्त हो रही थी जिसे पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने 'पुरानी हिन्दी' कहा है। उस भाषा में अपभ्रंशाभाश तो था पर वह अब हेमचन्द्र के 'शब्दानुशासनम्' से शासित भाषा न होकर एक नए व्याकरण की तलाश कर रही थी। उसमें शब्दों के रूप अपभ्रंश के बहुतायत से थे पर उसका अपना व्याकरण था जो हिन्दी के वर्तमान व्याकरण के निकट है। भाषा के ही समान साहित्य भी अपनी दिशा खोज रहा था। एक ओर उसमें सिद्धों के चर्यापद थे जिनमें साधनात्मक रूपक और समाज धर्म की विवृति थी तो दूसरी ओर जैन कवियों के आख्यान काव्य थे जिनमें कथाओं को काव्य रूप देकर जैन धर्म की शिक्षा दी जाती थी। उसमें चारण कवियों के वीर गाथात्मक रासो संज्ञक प्रबन्ध काव्य थे

और नाथ योगियों की बानियाँ और दोहे भी थे। इनके अतिरिक्त कहीं अमीर खुसरों के खड़ी बोली काव्य की बानगी उनकी पहेलियाँ, मुकरियों और लोकगीतों में थी, तो कहीं विद्यापति की मैथिली पदावलियाँ थीं और साथ ही सूफी फकीरों की स्फुट रचनाओं के बीच से मुल्लादाऊद का चंदायन भी प्रकट हो रहा था जिसकी परम्परा पर आगे सूफी प्रेमाख्यानों की एक मालिका ही बन गयी।
इस पृष्ठभूमि के साथ हिंदी साहित्य के आदिकाल की सामान्य प्रवृत्तियों पर चर्चा को सार्थक रूप प्रदान किया जा सकता है। जो निम्न लिखित हैं –

1. **ऐतिहासिक काव्यों की प्रधानता :**

ऐतिहासिक व्यक्तियों के आधार पर चरित काव्य लिखने का चलन हो गया था। जैसे - पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, कीर्तिलता आदि। यद्यपि इनमें प्रामाणिकता का अभाव है।

2.**लौकिक रस कीर चनाएँ :**

लौकिक-रससेसजी-संवरी रचनाएँ लिखने की प्रवृत्ति रही जैसे- संदेश-रासक, विद्यापति पदावली, कीर्तिपताका आदि।

3. **उपदेशात्मकसाहित्य :**

बौद्ध,जैन, सिद्ध और नाथ साहित्य में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति है, इनके साहित्य में रुक्षता है। हठयोग के प्रचार वाली रचनाएँ लिखने की प्रवृत्ति इनमें अधिक रही।

4. **उच्चकोटि का धार्मिक साहित्य :**

बहुत सी धार्मिक रचनाओं में उच्चकोटि के साहित्य के दर्शन होते हैं जैसे- परमात्म प्रकाश, भविसयत्त-कहा, पउम चरिउ आदि।

5. **फुटकर साहित्य :**

अमीर खुसरो की पहेलियाँ, मुकरी और दो सखुन जैसी फुटकर (विविध) रचनाएँ भी इस काल में रची जा रही थी।

6. **युद्धों का यथार्थ चित्रण** :

वीरगाथात्मक साहित्य में युद्धों का सजीव और हृदयग्राही चित्रण हुआ है। कर्कश और ओजपूर्ण पदावली शस्त्रों की झंकार सुना देती है। आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा, उनके युद्ध, विवाह आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है, लेकिन राष्ट्रीयता का अभाव रहा। पारस्परिक वैमनस्य का प्रमुख कारण

स्त्रियाँ थी। उनके विवाह एवं प्रेम प्रसंगों की कल्पना तथा विलास-प्रदर्शन में श्रृंगार का श्रेष्ठ वर्णन और उन्हें वीर रस के आलंबन-रूप में ग्रहण करना इस युग की विशेषता थी। स्पष्टत: वीर रस और श्रृंगार का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। चरित नायकों की वीर-गाथाओं का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन करने में ऐतिहासिक तानगण्य और कल्पना का आधिक्य दिखाई देता है। प्रबंध (महाकाव्य और खंडकावय) एवं मुक्तक दोनों प्रकार का काव्य लिखा गया। खुमान रासो, पृथ्वीराज रासो प्रबंध काव्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। बीसलदेव रासो मुक्तक काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है।

बोध प्रश्न

1 . प्रवृत्तिगत दृष्टि से आदिकाल को कितने भागों में बांटा गया है ?

2. प्रबंद्ध की दृष्टि से आदिकाल में किस प्रकार की रचनाएँकी गयीं हैं ?

3. प्रवृत्ति के आधार पर आदिकाल को क्या नाम दिया गया ?

2.6 आदिकालीन साहित्य की भाषा

आदिकाल की भाषा पर विचार करते हुए हमें उसके दो रूपों पर विचार करना होगा। प्रथमतः परवर्ती अपभ्रंश के रूप में लिखी गयी कविताएँ जिन्हें चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने पुरानी हिंदी कहा है। इसका रूप अपभ्रंश या अपभ्रंशाभाष की भाषा का है। इसे संध्याभाषा कहा गया है। संध्या का तात्पर्य है संधिकाल की भाषा। अपभ्रंश और लोकभाषा हिंदी के बीच की कड़ी होने के नाते इसे संध्याभाषा कहा गया है। इस भाषा का परिवर्तित रूप जो आगे चलकर गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं में मिलता है, वह इसी का ही अग्रिम विक्सित रूप है। रांगेयराघव ने 'गोरखनाथ और उनका युग' २०३-२०४ पर लिखा है -"अपभ्रंश काल और हिन्दी युग के मध्यकाल की कविता को संधियुगीन नाथ सम्प्रदाय की कविता ने स्वीकार किया है। गोरखनाथ इस युग के सच्चे प्रतीक हैं। वर्त्तमान नाथपंथी ग्रन्थ इस बात की और इंगित करते हैं कि उनका वास्तविक स्वरूप कुछ और था, वह अपभ्रंश और हिन्दी के बीच की भाषा थी और वह संध्या भाषा का परिवर्तित रूप था।"

गोरखनाथ की बानियों की भाषा का मूल ढांचा खाडीबोली का था परन्तु उसमें अन्य बोलियों के भी मिश्रण मिलते हैं। आदिकाल के विभिन्न कवियों ने भाषाओँ के विभिन्न रूपों का प्रयोग किया, जिसकी परंपरा को आगे भक्ति काल के कवियों ने आगे बढ़ाया। गोरखनाथ की भाषा की परंपरा कबीरादि में मिलती है तो अमीर खुसरो की भाषा भी आगे की परंपरा को प्रभावित करती है। आदिकाल में विद्यापति ने मैथिली भाषा में अपनी पदावली की रचना की जिसका विकास सूर आदि ब्रजभाषा के कवियों में मिलता है। मुल्लादाउद ने इसी काल में चंदायन लिखा। जिसकी परंपरा सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में चली। अपश्रंश के जैन कवियो ने जो चरित काव्य लिखे उसका प्रभाव भाषा और शैली दोनों ही दृष्टियों से तुलसीदास पर पड़ा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आदिकाल के भाषा कवियों ने जिन भाषिक परम्पराओं को अपनी अपनी रचनाओं में प्रगट किया उसका ही प्रभाव भक्तिकालीन कविता पर पड़ा।

बोध प्रश्न

1 . आदिकालीन साहित्य की भाषा क्या है?
2. संध्या भाषा क्या है ?
३. पुराणी हिंदी क्या है ?

2.6 सारांश

हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक महत्वपूर्ण पक्ष है साहित्यिक परम्पराओं का उदय, परिवर्तन और विकास। नयी रचनाशीलता से यदि पुरानी परम्पराएँ टूटती हैं तो कुछ नयी बनती भी हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में एक साथ कई कई परम्पराएँ शुरू हुयी। सिद्दोनाथों की विद्रोह वृत्ति, सामाजिक असंतोष की परम्परा पहली परम्परा है। दूसरी परम्परा राजस्तुतिपरक वीरगाथा काव्यों की चली। एक तीसरी परम्परा वीरगाथा काव्यों से ही फूट कर आल्हा के वीर गीतों की चली यह लोक आश्रय को लिए हुए थी। चौथी परम्परा विद्यापति की पदावली में देखने को मिलती है। विद्यापति जी ने वैष्णव भावना और शैव साधना को मिलाकर यह नयी परम्परा गढ़ी थी। इनमें प्रेम और भक्ति के तत्व तादात्मय बनाये हुए थे। पांचवी परम्परा अमीर खुसरों की पहेलियों और मुकड़ियों में मिलती है। यह लोक रंजन का लक्ष्य लेकर चल रही थी। आदिकालीन साहित्य इन विभिन्न परम्पराओं के सहअस्तित्व का साहित्य है।

आदिकालीन साहित्य जन भाषा में, जन भावनाओं और जन संस्कृति की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह संस्कृत साहित्य और आभिजात्य संस्कृति से बहुत हद तक स्वतंत्र होकर लिखा गया। आदिकाल में विभिन्न जनपदों में साहित्य रचा जा रहा था। इसका भौगोलिक दायरा बहुत विस्तृत है। उसमें सक्रीय रचनाशीलता मुख्यतः दो ध्रुवान्तों पर देखी गयी। पश्चिम में राजनैतिक आक्रमणों की लहरे हैं इसलिए राज दरवारों में तत्कालीन राजनैतिक चुनौतियों को ध्यान में रखकर वीर गाथाएँ लिखी जा रही थी। वीर गथाएँ सामन्ती वर्ग की आकांक्षाओं और उनके शौर्य का इतिवृत्त है। अपेक्षाकृत निरापद पूरब में सिद्दो और नाथों ने अपनी धार्मिकता के साथ-साथ सामाजिक समानता की अलख जगायी। यदि पश्चिमी प्रदेशों के साहित्य में वीर गाथात्मकता और श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति का मिश्रण है तो सिद्दो नाथो की रचानाओं में सामाजिक असंतोष और आध्यात्मिकता की प्रवृत्ति का मिश्रण है। पूरब में ही विद्यापति जी वीरगाथात्मकता, प्रेम और भक्ति को एक साथ लेकर चल रहे थें। आदिकाल में काव्य रूपों का भी सामंजस्य और संतुलन है। पश्चिम में तमाम रासों काव्य प्रंबध काव्य रूप में लिखे गये। पूरब में सिद्दों नाथो की रचनाएँ विद्यापति की पदावली मुक्तक है। पश्चिम में यदि अमीर खुसरों अपनी पहेलियों मुकड़ियों जैसे नये मुक्तक काव्य रूप के द्वारा प्रबंधात्मकता की बांध को नियंत्रित करने की कोशिश कर रहे थे तो पूरब में विद्यापति जी प्रबंध रूप में कीर्त्तिलता और कीर्त्तिपताका लिखकर मुक्तक काव्य रूप के प्रावल्य को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहे थे। इस तरह सम्पूर्ण आदिकालिन साहित्य दो विरूद्धों के सामंजस्य का साहित्य लगता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है कि भारतीय साहित्य में हिन्दी" ही मात्र एक ऐसी भाषा है जिसमें पश्चिमी आर्यों की रूढीप्रियाता और कर्मनिष्ठा के साथसाथ पूर्वी प्रदेशों के आर्यो की भाव प्रबणता-, विद्रोही वृत्ति और प्रेमनिष्ठा का मणिकांचन योग है।हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस कथन से यह लगता है कि पश्चिम के आर्य

और पूरब के आर्य अलग अलग थे और उनकी प्रावृत्तियाँ भी अलगअलग थीं । यह अजीव है कि रूढ़ियों कहीं थी - और उनके विरूद्ध विद्रोह कही और हो रहा था। जहाँ रूढ़ियाँ होगी, जहाँ लोग उससे पीड़ित होंगें, वही विद्रोह भी होगा। यहाँ द्विवेदी जी के कथन का लाक्षणिक अर्थ यह है कि आदिकाल में भिन्न भिन्न क्षेत्रों की प्रवृत्तियों में सामंजस्य दिखायी पड़ता है।

2.7 बोध प्रश्न:

1. आदिकाल के कालविभाजन की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
2. हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल के नामकरण संबंधी विवादों की चर्चा करते हुए 'आदिकाल' नाम की सार्थकता स्पष्टकीजिये।
3. आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि पर चर्चा करते हुए बताइए कि उस युग की परिस्थितियों से उस समय का साहित्य कैसे प्रभावित हुआ।
4. सिद्धसाहित्यकी चर्चा करते हुए उसके अभिव्यंजना पक्ष पर प्रकाश डालिए।
5. सिद्ध और नाथ में अंतर स्पष्ट करते हुए नाथ साहित्य की चर्चा कीजिये।
6. जैन साहित्य के विविध प्रकारों का विवेचन कीजिये।
7. रासो काव्य की पृष्ठभूमि का विवेचन कीजिये।
8. आदिकालीन लौकिक साहित्य पर एक निबंध लिखिए।
9. आदिकालीन लौकिक साहित्य में अमीर खुसरो के योगदान की चर्चा कीजिये।
10. सन्देश रासक क्या है ?
11. आदिकालीन साहित्य में विद्यापति के काव्य के महत्त्व को दर्शायें।
12. रासो साहित्य की प्रमाणिकता पर अपने विचार स्पष्ट करें।

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1 .हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य राम्चान्द्रशुक्ल
2. हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास : नागरी प्रचारिणी सभा
३. हिंदी साहित्य का आदिकाल : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिंदी साहित्य का संछिप्त इतिहास : विश्वनाथ त्रिपाठी
5.हिंदी साहित्य का अतीत : विश्वनाथप्रसाद मिश्र
6.हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : डॉ. बच्चन सिंह

इकाई- 3

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय

3.1 इकाई का उद्देश्य

3.2 भक्ति आंदोलन: उद्भव और विकास

3.3 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियाँ

3.4 भक्ति का अखिल भारतीय स्वरूप और उसका अन्तः प्रादेशिक वैशिष्ट्य

3.5 भक्ति साहित्य की विभिन्न धाराएं

3.5.1 संत काव्य

3.5.1.1 सन्त साहित्य की विशेषताएँ

3.5.1.2 कबीर

3.5.1.3 रचनाएँ

3.5.2 सूफी काव्य

3.5.2.1 जायसी 'पद्मावत'

3.5.2.2 सूफी प्रेमाख्यानक काव्य की विशेषताएँ

3.5.3 कृष्ण काव्य

3.5.3.1 कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय

3.5.3.2 कृष्णभक्ति काव्य की विशेषताएँ

3.5.3.3 सूरदास

3.5.4 राम काव्य

3.5.4.1 तुलसीदास

3.5.4.2 रामभक्ति काव्य की विशेषताएं

3.6 भक्तिकाव्य की प्रवृत्तियां

3.6.1 ईश्वर के उत्कट प्रेम एवं अनन्य निष्ठा

3.6.2 अहं का विगलन

3.6.3 सांसारिक विषय वासनाओं के प्रति उदासीनता

3.6.4 गुरु महिमा

3.6.5 नाम स्मरण का महत्त्व

3.6.6 संतो के प्रति श्रद्धा एवं सत्संग पर बल

3.6.7 मानवतावादी दृष्टि

3.6.8 लोकोन्मुखता

3.7 प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

3.7.1 संत काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

3.7.2 सूफी काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

3.7.3 कृष्ण काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

3.7.4 राम काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

3.8 भक्तिकालीन साहित्य और लोक जागरण

3.9 भक्तिकालीन कवियों की भाषा दृष्टि एवं काव्य भाषा

3.10 सारांश

3.11 शब्दावली

3.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

1 इकाई का उद्देश्य

- भक्ति काल की विकास प्रक्रिया से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकाल की युगीन परिस्थितियों का अध्ययन कर सकेंगे।
- भक्ति काल की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत संत काव्य, सूफी काव्य, कृष्ण काव्य, राम काव्य से परिचित हो सकेंगे।
- इस इकाई के अंतर्गत भक्ति काल की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- इसी के अंतर्गत उन रचनाकारों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे जिन्होंने भक्ति काल को नई दिशा प्रदान की।
- भक्ति कालीन भाषा, शैली का अध्ययन कर सकेंगे।

- भक्ति कालीन काव्य और लोक जागरण के संबंधों का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्भव और विकास

हिंदी का प्रथम सुव्यवस्थित इतिहास लिखने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है। हिंदी साहित्य का इतिहास सर्वप्रथम हिंदी शब्द सागर की भूमिका के रूप में छपा फिर पुस्तक आकार में 1929 ई० में छपा। श्री शुक्ल ने इतिहास को परिभाषित करते हुए राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक, धार्मिक परिस्थितियों के प्रभाव तथा परिवर्तन के संदर्भ में साहित्य इतिहास की प्रवृत्तियों को विश्लेषित किया। साहित्य के इतिहास का विभाजन उनके प्रस्तुत पंक्तियों में देखा जा सकता है- "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का स्थाई प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के रूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को रखते हुए साहित्य परंपरा के साथ-साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य इतिहास कहलाता है।"

आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के 900 वर्ष के इतिहास को निम्नलिखित काल खंडों में प्रस्तुत किया है-

- वीरगाथा काल संवत 1075 से 1375 तक
- भक्तिकाल संवत 1375 से 1700 तक
- रीतिकाल संवत 1700 से 1900 तक
- आधुनिक काल संवत 1900 से आज तक

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति काल का जो निर्धारण किया है सामान्य तौर पर सभी विद्वान उसी का अनुसरण करते हैं लेकिन कुछ विद्वान असहमति भी प्रकट करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल से अलग देखें तो आदिकालीन सिद्ध, नाथ, जय साहित्य में दिखाई पड़ने वाली भक्ति में वह उन्मेष और तन्मयता नहीं है जो भक्ति काव्य में दिखाई पड़ती है दूसरी ओर रीतिकाल के भक्ति काव्य में सरसता तो विद्यमान है लेकिन यह भक्ति काव्य का ही अनुसरण है इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा निर्धारित भक्तिकाल की समय सीमा यथोचित दिखाई पड़ती है। भक्ति काल की सीमा 14वीं सदी के मध्य से लेकर 17वीं सदी के मध्य तक मानी जाती है क्योंकि इस समय तक आते-आते भक्ति काल की प्रवृतियां रीतिकाल की प्रवृत्तियों के सामने कमजोर पड़ने लगती हैं।

पूर्व मध्यकाल का नामकरण आचार्य शुक्ल ने भक्ति काल किया तो इसके पीछे उनका आधार भक्ति तत्व की प्रधानता थी। इस युग की कविता की मूल संवेदना भक्ति है। चाहे संत काव्य हो या प्रेमाख्यानक काव्य, राम भक्ति मार्ग हो या कृष्ण भक्ति मार्ग, सभी के केंद्र में भक्ति है भले ही उनका स्वरूप भिन्न हो। इस काल में अन्य विशेषताओं से युक्त कृतियों की भी रचना हुई परंतु उनका महत्व या तो कम है या प्रभावी नहीं है।

3.3 भक्ति काल की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियाँ

आदिकाल को परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा के साहित्य का बढ़ावा मानते हुए कुछ विद्वान भक्ति साहित्य से ही वास्तविक हिंदी साहित्य का आरंभ मानते हैं। चौदहवीं शताब्दी से जिस भक्ति साहित्य का सृजन प्रारंभ हुआ उसमें ऐसे महान साहित्य की रचना हुई जो भारतीय साहित्य इतिहास में अपने ढंग का निराला साहित्य है इस महान साहित्य की पृष्ठभूमि की चर्चा संक्षेप में निम्न प्रकार संभव है। युगीन परिस्थितियाँ साहित्यिक प्रवृत्तियों को निर्मित करती हैं, उन्हें प्रेरित और प्रभावित करती है। रचनाकार जिस युग और परिवेश की उपज होता है वह उससे उदासीन नहीं रह सकता। वह रचना में अपने युग की अभिव्यक्ति ही नहीं करता बल्कि वह युगीन सीमाओं का अतिक्रमण करके अपने युग को नए मूल्य और नई संकल्पनाएँ देता है। पूर्व मध्यकाल राजनीतिक सत्ता, सामाजिक अवस्था, सांस्कृतिक परिवेश में बड़े परिवर्तन और उलटफेर का समय है। मुसलमानों के आक्रमण एवं सत्ता की स्थापना से पूरे समाज पर एक गहरा प्रभाव पड़ा, नई आर्थिक सामाजिक व्यवस्था लागू हुई जो भक्ति आंदोलन को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसलिए भक्ति काल को समझने हेतु उन परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है-

3.3.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

भारत में मुस्लिम समुदाय की स्थापना हो चुकी थी और परस्पर कलह में डूबे हिंदू राजा विरोध करने में समर्थ नहीं रह गए थे। यह काल भी युद्ध और अशांति का काल ही था। मुस्लिम शासकों के सिपाही और अधिकारी हिंदू जनता पर अत्याचार करते थे, इस युग की राजनीतिक परिस्थितियाँ विषम थी, मराठे, सिख तथा हिंदू शासक मुसलमानों का विरोध करते थे। इनमें स्वतंत्रता की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती थी, हिंदू जनता मुसलमानों के अत्याचार का शिकार थी, उनकी तोड़कर मस्जिदें बनाई गई।

भक्तिकाल राजनीतिक दृष्टि से तुगलकवंश से लेकर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन तक का काल है। दसवीं शताब्दी में पश्चिममोत्तर भारत में तुर्कों के कई आक्रमण हुए, तत्कालीन भारतीय राजाओं की आपसी फूट एवं प्रतिस्पर्धा के कारण धीरे-धीरे मुसलमानों का राज उत्तर भारत में स्थापित हो गया। पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गौरी के बीच युद्ध होता है इसमें 1192 ई में पृथ्वीराज चौहान पराजित हो जाता है, भारतीय इतिहास में काफी निर्णायक माना जाता है भारत में तुर्कों की सत्ता स्थापित करने की जमीन तैयार हो गई। मोहम्मद गोरी ने जयचंद को पराजित किया जिसके बाद तुर्कों से लड़ने के लिए कोई तैयार नहीं था। 1206 ई में कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का शासक बना जिसने गुलाम वंश की स्थापना की। गोरी के उत्तराधिकारी के रूप में चलदोज गोरी का उत्तराधिकारी बना जिसने दिल्ली पर अपना दावा पेश किया दिल्ली सल्तनत को मध्य

एशिया की राजनीति से अलग कर स्वतंत्र सत्ता स्थापित की। तुर्कों को अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ी। बलबन गुलाम वंश का सबसे प्रभावशाली शासक हुआ उसके दरबार के मंत्री के रूप में अमीर खुसरो और अमीर हसन प्रसिद्ध थे। इसके बाद खिलजी वंश का शासन रहा। अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी आक्रामक नीति से दिल्ली का शासन दक्षिण तक फैलाया और बाजार नियंत्रण, राजस्व व्यवस्था के पुनर्गठन द्वारा शासन व्यवस्था को भी मजबूती प्रदान की। इसके बाद तुगलक वंश का दिल्ली पर शासन रहा। 1398ई. में तैमूर ने आक्रमण किया, उसने दिल्ली को तहस-नहस कर दिया इसके बाद दिल्ली पर सैयद और लोदी वंश का शासन रहा जिसका अंतिम शासक सुल्तान इब्राहिम शाह लोधी था जिसके समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया। पानीपत के प्रथम युद्ध में (1526ई) बाबर ने इब्राहिम लोदी को हराकर मुगल वंश की स्थापना की। इसके बाद हुमायूं उसका उत्तराधिकारी बना। शेरशाह सूरी भी कुछ समय तक दिल्ली का शासक रहा जो एक कुशल योद्धा और कुशल प्रशासक था। शेरशाह की असमय मौत के कारण फिर से दिल्ली का शासक बना जिसके बाद हुमायूं का पुत्र अकबर उसका उत्तराधिकारी बना। अकबर के शासन काल में मुगल साम्राज्य सुदृढ़ तरीके से भारत में स्थापित हो गया जिसका शासन पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूरब में असम तक फैल गया। अकबर दूरदर्शी और उदार शासक था। अकबर के पश्चात जहांगीर और शाहजहां उसके उत्तराधिकारी बने हैं।

3.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

इस समय जाति प्रथा और ऊंच-नीच की भावना विद्यमान थी। अमीर अत्याचारी थे, गरीब और मूलभूत आवश्यकताओं के लिए जद्दोजहद कर रहे थे। एक विद्वान लिखते हैं- हिंदुओं के पास धन संचित करने के कोई साधन नहीं रह गए थे, अभाव और आजीविका के लिए निरंतर संघर्ष में जीवन बिताना पड़ता था। प्रजा के रहन-सहन का स्तर निम्न कोटि का था। करों का सारा भार उन्हीं पर था, राज्य पद उनको प्राप्त नहीं थे, राज्य शक्ति पक्षपात पूर्ण थी। हिंदू-मुस्लिम संस्कृति का आदान-प्रदान हुआ, बाल-विवाह का प्रचलन हुआ, मुसलमान हिंदू स्त्रियों को हरम में रखते थे। तुलसीदास पंक्तियों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थिति का प्रतिबिंब बनाते हैं-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,

बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।

जीविका विहीन लोग सीधमान सोच बस,

कहै एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी॥

इस काल में हिंदू समाज वर्णों और जातियों में विभक्त था। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था, शूद्रों की निम्न स्थिति थी। जातिगत श्रेष्ठता एवं छुआछूत की भावना तत्कालीन परिवेश में व्याप्त थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं उनकी सत्ता स्थापित होने से परंपरागत भारतीय समाज को एक धक्का लगा। सामंतों एवं पुरोहितों की स्थिति कुछ कमजोर हुई। एक तरफ जहाँ परम्परागत सामाजिक संरचना को बचाये रखने के

लिए वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का कठोरता से पालन करने पर जोर दिया गया, वहीं दूसरी तरफ समानता और आपसी भाईचारे पर आधारित इस्लाम के प्रति हिंदू समाज की निचली जातियाँ आकर्षित हुई। बहुतों ने धर्मांतरण कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। धर्मांतरण स्वेच्छा में भी हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा बलात् भी कराया गया। ऊँच-नीच की भावना सिर्फ हिंदू समाज में ही नहीं मुस्लिम समाज में भी विद्यमान थी। अफगानी, तुर्की, ईरानी एवं भारतीय मुसलमानों में नस्लगत श्रेष्ठता एवं प्रतिस्पर्धा की भावना थी। मुसलमान शासक भारत में आक्रांता के रूप में आए थे, हिंदुओं में उनके प्रति अलगाव, विरोध, शंका का भाव होना स्वाभाविक था। किंतु दोनों कौमों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं सामंजस्य भी बढ़ रहा था। सूफियों का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। मुस्लिम शासकों एवं राजपूत शासकों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुए। उस काल में सामान्यतः संयुक्त परिवार का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज में बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा प्रचलित थी। मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की स्थिति हिंदू स्त्रियों की तरह ही थी। विदेशी यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि उस समय दास प्रथा का भी प्रचलन था।

मध्यकाल में उद्योग, व्यापार में प्रगति हुई, कृषि में सुधार हुआ। किंतु गाँवों में किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। लगान और अकाल के कारण उन्हें काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। अकाल और भूख से बेहाल किसान की पीड़ा को तुलसी ने व्यक्त किया है-

कलि बारहि बार दुकाल परै।
बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।।

उस समय यदि एक वर्ग खुशहाल था तो दूसरा वर्ग भूख, गरीबी, बेकारी से त्रस्त।

3.3.3 धार्मिक परिस्थितियाँ

यह समय मतों, संप्रदायों और धर्मों के परस्पर विरोध का काल है सिद्ध नाथों की विचारधारा से प्रेरित समुदाय थे जिनमें साधना विहीन चमत्कारी प्रवृत्ति से जनता को प्रभावित करने की प्रबल भावना थी। वैष्णव, शैव, शाक्तों के असहिष्णुता से प्रेरित विरोध भी प्रबल थे। डॉ राजनाथ शर्मा कहते हैं- इसके साथ ही हम इस्लाम विद्रोही को एक ऐसे धर्म या उपासना मार्ग का प्रवर्तन करते हुए देखते हैं जो धर्म के संपूर्ण बाह्य विधानों को एक ओर हटाकर केवल प्रेम द्वारा ईश्वर की उपासना करने में आस्था रखते हैं। बौद्धों में हीनयान और महायान दो संप्रदाय विकसित हुए जिसमें पहला धर्म की दार्शनिक व्याख्या करने में लग गया अतः जनजीवन से दूर हो गया तो दूसरा महायान व्यवहारिक रहा, इसमें अशिक्षित, असंस्कृत और निम्न वर्ग को आश्रय मिला। वैष्णव भक्ति काफी प्रभावी थी इसमें अवतार भावना प्रमुख थी।

3.3.4 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

इस युग में दो परस्पर भिन्न संस्कृतियों और विचारधाराओं का स्पष्ट संघर्ष दिखाई देता है। एक ओर हिंदू संस्कृति अपनी पूर्णता और प्राचीन परंपरा को लिए हुए अस्तित्व रक्षा में प्रयत्नशील थी तो दूसरी और नवीन धार्मिक उन्माद से भरी हुई मुस्लिम संस्कृति हावी होना चाह रही थी। अपनी रक्षा हेतु हिंदुओं ने सामाजिक बंधनों को दृढ़ और संकीर्ण बना दिया। फलतः संकीर्णता के आवरण में धार्मिकता गौण हो गई। इस संकीर्णता का विरोध संत कवियों ने किया है इस विरोध को मिटाने हेतु समन्वय की भावना ने जन्म लिया। भक्ति काल की विभिन्न स्थितियों का जहां भक्ति साहित्य पर प्रभाव पड़ा वहीं यह भी विचारणीय है कि भक्ति भावना का जोर दक्षिण से उत्तर की ओर आया। रामधारी सिंह दिनकर की मान्यता है- उत्तर भारत में जब वैष्णव भक्तों का जमाना आया उसके पहले ही दक्षिण के आलवार संतो ने भक्ति का बहुत कुछ विकास कर लिया था और वहीं से भक्ति की लहर उत्तर भारत में पहुंची। इसलिए 14वीं शताब्दी के बाद जिस हिंदी साहित्य की रचना हुई उसकी मूल प्रेरणा भक्ति ही रही।

3.4 भक्ति का अखिल भारतीय स्वरूप और उसका अन्तः प्रादेशिक वैशिष्ट्य

भक्ति की प्रवृत्ति, पद्धति का सम्बन्ध सिर्फ भागवत् धर्म और भक्ति आंदोलन से ही नहीं है। भक्ति का एक क्रमिक विकास होता है। वैसे भक्ति के बीज वेदों में मिलते हैं। विभिन्न प्राकृतिक उपादनों का दैवीकरण, सुख-शांति समृद्धि की कामना से उनकी स्तुति वैदिक ऋचाओं की मूल विशेषता है। ईश्वर की कल्पना, आत्म निवेदन, शरणागत की भावना, दैन्य भाव, श्रद्धा का भाव आदि जो भक्ति की मूलभूत विशेषताएं हैं ये बातें हमें वैदिक ऋचाओं में भी मिलती हैं। परमात्मा की माता-पिता, बंधु-सखा के रूप में अर्चना की गई है- प्रभु! तुम्हीं हमारे पिता हो, तुम्ही हमारी माता हो। हे अनंतज्ञानी! आपसे ही हम आनंद-प्राप्ति की अकांक्षा करते है

"त्व हि नों पिता वसोत्वं माता शतक्रतो वभूविथा अद्या ते सुम्नमीमहे (ऋग्वेद 8/98/11)।'

पूरी तन्मयता और सर्वस्व सर्मपण की भावना को प्रकट करते हुए ऋग्वेद का ऋषि कहता है- 'प्रभो ये हैं तेरे उपासक, तेरे भक्त। ये प्रत्येक स्तवन में, तेरे कीर्तन -गान में ऐसे तन्मय होकर बैठते हैं, जैसे मधुमक्षिकाएँ मधु को चारों ओर से घेर कर बैठ जाती हैं। तेरे अंदर बस जाने की कामना रखने वाले तेरे ये स्तोता अपनी समस्त कामनाओं को तुझे सौंपकर वैसे ही, निश्चिंत हो जाते हैं, जैसे कोई व्यक्ति रथ में निश्चित होकर बैठ जाता है।

में हि ब्रह्मकृतः सुते सचा मधो न मक्ष आसते ।
न्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः।।
(ऋ. 7/32/2)

वेदों मं ईश्वर की सर्वसमर्थता, उसकी महिमा का बखान, उसके प्रति श्रद्धा निवेदित किया गया है-

यो भूतं च भव्यं च सर्व श्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।
(अथर्ववेद - 10/8/1)

अर्थात् भूत भविष्य और वर्तमान का जो स्वामी है, जो समस्त विश्व में व्याप्त हैं तथा जो निर्विकार आनद प्रदान करने वाला है, उस ईश्वर को मेरा प्रणाम।' उपनिषदों में तत्व चिंतन की प्रधानता है किंतु कहीं-कहीं पर भक्ति विषयक बातें भी मिलती है। ऐतरेय, श्वेताश्वतरोपनिषद में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं, कठोपनिषद में कहा गया है- 'यह आत्मा उत्कष्ट शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेघा के द्वारा प्राप्त नहीं होता, बहुत पांडित्य के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। यह जिसको वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। जिसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।'

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणुते तनू, स्वाम।।

यहाँ प्रभुकृपा का वर्णन है, जो कि भक्ति का आधार है। भगवत्कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती और भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति। भक्ति चिंतन में ईश्वर ही परमतत्व, जगत निर्माता, जगत नियंता, सृष्टि विनाशक है, उसी के द्वारा सृष्टि का सृजन होता है और उसी में सृष्टि विलीन हो जाती है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत।' अर्थात् 'जगत की सभी वस्तुएं ब्रह्म हैं, क्योंकि सभी ब्रह्म से ही उत्पन्न होती हैं, ब्रह्म में ही अवस्थान करती है तथा ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है। इस प्रकार चिंतन करते हुए मन को शांत रखकर उपासना करनी चाहिए।' छांदोग्य उपनिषद में ही भक्ति को सबसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस कहा गया है-

स एवं रसानां रसतमः परम परार्धे।

उपनिषदों के बाद भक्ति की प्रबल धारा भागवत धर्म के रूप में प्रकट हुई। भागवत धर्म के प्रवर्तन के साथ ही अवतारवाद की अवधारणा का जन्म हुआ बहुदेवोपासना और लीलागान का प्रचलन हुआ। इसमें ईश्वर को ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज- इन 6 गुणों से युक्त माना गया, जिनके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण, भरण-पोषण और संहार करता है। अवतारवाद एवं भक्ति का पुराणों में विस्तृत वर्णन है। इनमें भागवत पुराण मुख्य है। दक्षिण के आलवार नयनार भक्तों ने भक्ति तत्व का प्रचार प्रसार किया, आठवीं सदी में शंकराचार्य के अद्वैत एवं मायावाद के कारण भक्ति का प्रवाह थोड़ा अवरुद्ध होता है। किंतु कालांतर में रामानुजाचार्य, निम्बाकाचार्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य ने राम-कृष्ण की भक्ति को लोकप्रिय ही

नहीं बनाया उसे एक सैद्धांतिक आधार प्रदान कर शास्त्रीय गरिमा भी दी। भक्ति का तत्व वेद उपनिषद महाभारत, पुराण आदि से होते हुए सतत् प्रवाहमान रहा, निरंतर विकसित होता रहा। भक्ति आंदोलन ने उसे व्यापक और लोकप्रिय बना दिया।

भक्ति आंदोलन का उदय दक्षिण से हुआ और वह क्रमशः उत्तर भारत में फैलता गया। हिन्दी में उक्ति है-

भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद।

प्रगट करी कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड।।

उपर्युक्त उद्धरण से विदित होता है कि भक्ति का उदय द्रविड़ देश (तमिलनाडु) में हुआ। एक संस्कृत श्लोक से ज्ञात होता है कि द्रविड़ देश में उदय के पश्चात्, भक्ति का आगे विकास कर्नाटक, फिर महाराष्ट्र में हुआ और उसका पतन गुजरात देश में हुआ, फिर वृंदावन में उसे पुनर्जीवन, उत्कर्ष मिला। हिन्दी की अनुश्रुति में भक्ति को रामानंद द्वारा दक्षिण से उत्तर ले जाने और कबीर द्वारा प्रचारित प्रसारित किए जाने का स्पष्ट संकेत है। स्पष्ट है कि संस्कृत श्लोक का सम्बद्ध कृष्ण भक्ति से और हिन्दी अनुश्रुति का सम्बन्ध रामभक्ति से है। बहरहाल आलवारों नयनारों का प्रमुख विरोध बौद्ध और जैन धर्म से था। उन दिनों दक्षिण में इन दोनों धर्मों का काफी प्रभाव था, किन्तु अपने मूल स्वरूप को खोकर ये धर्म कर्मकाण्डीय जड़ता और तमाम तरह की विकृतियों के शिकार हो गए थे। ऐसे समय में आलवार (विष्णुभक्त) और नयनार (शिव भक्त) संतों ने जनता के बीच भक्ति को प्रचारित करने का कार्य किया। महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन को ज्ञानदेव, नामदेव ने आगे बढ़ाया। इनकी भक्ति सगुण-निर्गुण के विवादों से परे थी। ज्ञानदेव की भक्ति पर उत्तर भारत के नाथ पंथ का भी गहरा प्रभाव था। आगे चलकर महाराष्ट्र में तुकाराम और गुरु रामदास हुए। आठवीं सदी में शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का में प्रतिवाद करते हुए वेदों, उपनिषदों की नई व्याख्या कर वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। उनका विरोध अलवार एवं नयनार से भी था। उन्होंने अद्वैतवाद, मायावाद का प्रवर्तन कर ज्ञान को, सर्वोपरि महत्ता दी। शंकराचार्य का विरोध परवर्ती वैष्णव आचार्यों रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य, निम्बार्क ने किया। ये लोग सगुण ब्रह्म के उपासक और भक्ति द्वारामुक्ति को मानने वाले थे। शंकराचार्य जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे वहीं इन आचार्यों का भक्तिमार्ग भेदभाव रहित था।

रामानुज के शिष्य राघवानंद ने भक्ति को उत्तर भारत में प्रचारित किया। इनके शिष्य रामानंद हुए, जिन्होंने भक्ति मार्ग को और भी उदार बनाकर सगुण-निर्गुण दोनों की उपासना का उपदेश दिया। इनके शिष्यों में सगुण भक्त और निर्गुण संत दोनों हुए। इनके निम्न शिष्य प्रसिद्ध है- रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, पद्मावती, सुरसुरी। रामानंद ने रामभक्ति मार्ग को प्रशस्त किया, जिसमें आगे चलकर तुलसीदास हुए। श्री कृष्ण भक्तिमार्ग को वल्लभाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, हितहरिवंश, विट्ठलनाथ ने आगे बढ़ाया निर्गुण भक्तिमार्ग में कबीर सर्वोपरि है, उन्होंने, वैष्णव सम्प्रदाय से ही नहीं, सिद्धों,

नाथों और महाराष्ट्र के संतज्ञानेश्वर, नामदेव से बहुत कुछ ग्रहण कर निर्गुण पंथ का उत्तर भारत में प्रवर्तन किया। भारत में इस्लाम के आगमन के साथ सूफी मत का भी प्रवेश हुआ। सूफी मत इस्लाम की रूढ़ियों से मुक्त एक उदारवादी शाखा है। इसके कई संप्रदाय है- चिश्ती, कादिरा, सुहरावर्दी, नक्शबंदी, शत्तारी। भारत में चिश्ती और सुहरावर्दी संप्रदाय का विशेष प्रसार हुआ। हिंदू-मुस्लिम के सांस्कृतिक समन्वयीकरण में सूफी मत काफी सहायक हुआ।

इस प्रकार भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से शुरु होकर समूचे भारत में फैला और शताब्दियों तक जन सामान्य को प्रेरित प्रभावित करता है। उसका एक अखिल भारतीय स्वरूप था, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी जगहों पर हम इस आंदोलन का प्रसार देखते हैं, सभी वर्ग, जाति, लिंग, समुदाय, संप्रदाय, क्षेत्र की इसमें भूमिका, सहभागिता थी। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, रामदास, गुजरात में नरसी मेहता, राजस्थान में मीरा, दादू दयाल, उत्तर भारत में, कबीर, रामानंद, तुलसी, सूर जायसी, रैदास, पंजाब में गुरु नानक देव, बंगाल में चण्डीदास, चैतन्य, जयदेव असम में शंकरदेव सक्रिय थे। भक्ति आंदोलन में दौरान कई संप्रदायों का जन्म हुआ, जिन्होंने मानववाद के उच्च मूल्यों का प्रसार किया, सामान्य जन-जीवन में स्फूर्ति एवं जागरण का संचार किया।

भक्ति आंदोलन मध्य काल की महत्वपूर्ण घटना है जिसमें भारतीय समाज को सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सभी रूपों में प्रभावित किया है। ऐसा कहा जा सकता है कि बुद्ध के बाद से ज्यादा भारतीय समाज को प्रभावित करने वाला आंदोलन भक्ति आंदोलन था जिसने पूरे भारत में फैले ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष, हिंदू-मुस्लिम सभी को अपने में समाहित किया। विद्वानों का मानना है कि मूल रूप में भक्ति आंदोलन एक धार्मिक आंदोलन था किंतु सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों, धार्मिक उत्पीड़न आदि के विरुद्ध इसमें कठोरता थी। भक्ति काव्य इसी भक्ति आंदोलन से उत्पन्न हुआ जिसने समाज में व्याप्त बुराइयों, रूढ़ियों, मुसलमानी शासकों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों आदि के विरुद्ध प्रखर विरोध किया।

3.5 भक्ति साहित्य की विभिन्न धाराएँ

3.5.1 संत काव्य

भारतीय दर्शन में ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन मुख्यतया दो रूपों में हुआ है- निर्गुण और सगुण। इन दोनों धाराओं में अनुभूति, विचार और अभिव्यक्ति की समानता अधिक है वैषम्य बहुत कम। निर्गुण में ब्रह्म का साक्षात्कार विशुद्ध अनुभूतिपरक है। निर्गुण भक्त यद्यपि ज्ञान, कर्म और ध्यान की उच्चतम स्थिति से अपने को सम्बद्ध करने की चेष्टा करते हैं किन्तु लोक आस्थाओं एवं लोक भावनाओं की उपेक्षा नहीं कर पाते हैं। निर्गुण भक्त के रहस्यवादी वर्णनों में जहाँ आत्मा, परमात्मा, प्रेयसी और प्रिय के प्रतीकों का रूप ग्रहण कर लेते हैं वहाँ

श्रृंगार रस की व्यापक लोक भूमिका बन जाती है। सन्त की व्युत्पत्ति सद्, शान्त आदि शब्दों से मानी जाती है भारतीय साहित्य में वैरभाव से रहित सांसारिक विषय वासनाओं से विरक्त, विवेकशील, सज्जन, परोपकारी समदर्शी पुरुष को सन्त कहा जाता है। अधिकतर विद्वान सन्त मत के प्रवर्तन का श्रेय कबीर को देते हैं किन्तु कबीर से पूर्व विट्ठल सम्प्रदाय में सन्त सम्प्रदाय की प्रायः समस्त विशेषताओं का सूतपात हो गया था।

3.5.1.1 सन्त साहित्य की विशेषताएँ

सन्त सम्प्रदायों तथा विभिन्न सन्तों के विचारों, अनुभूतियों तथा अभिव्यक्ति शैली के विश्लेषण के पश्चात, सन्तकाव्य की कतिपय सामान्य प्रवृत्तियाँ तथा विशेषताएँ उभरकर सामने आती हैं। सन्तमत का निर्माण परम्परा और मौलिकता के संयोग से हुआ है। इन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया, यह निर्गुण ब्रह्म राम, रहीम अल्लाह आदि नामों से पुकारा जा सकता है किन्तु किसी एक विशेष से नहीं।

1. आत्मा

परमात्मा में कोई तात्विक भेद नहीं है जैसे जल और लहर में। जीव अविद्याग्रस्त होकर माया के वशीभूत रहता है, माया ब्रहम और जीव के बीच भेद बुद्धि उत्पन्न करने वाली शक्ति है। यह महाठगिनी, सर्पिणी, मोहिनी, कपटी आदि नामों से सम्बोधित है।

2. साधना का स्वरूप

सन्तो ने अपनी पूर्व परम्परा से प्रचलित समस्त साधना पद्धतियों को आत्मसात करने का प्रयास किया। मूर्तियों और मन्दिरों के टूटने के साथ ही बद्धमूलक लोक आस्था टूटती थी। सन्तों ने सही मौके पर उद्घोष किया कि मूर्ति और मन्दिर धर्म नहीं है।

3. गुरु

गुरु की सन्त साधना में महत्वपूर्ण भूमिका है वह अनन्त ज्ञान की दृष्टि को उद्घाटित करता है गुरू भृंगी स्वभाव का होता है जो उसके सम्पर्क में आता है वह उसी के रंग में रम जाता है।

4. योग

चित्त वृत्तियों का निरोध करके उनकी बहिर्गतियों को अन्तर्मुखी करके भक्ति साधना में लीन करने के लिए सन्तों ने योगमार्ग का अनुसरण किया । प्रेम पर इन सन्तों ने इतना जोर दिया कि भक्त के बिना भगवान को भी अपूर्ण बताया है,यह भावना केवल ज्ञानगम्य ब्रहम को आश्रय करके नहीं चल सकती।

5. नाम साधना

नाम साधना को सन्तो ने विशेष महत्व प्रदान किया। कबीर निर्गुण राम के जप का उपदेश देते है।

6. भक्ति भावना

सन्तो ने योग, कर्म, ज्ञान की पृष्ठभूमि में अपनी भक्ति भावना को प्रतिष्ठित किया इनकी भक्ति के चार रूप परिलक्षित होते हैं-

A. **दास्यभाव-** सन्तजन बड़ी विनम्रता से भगवान की कृपा के लिए समर्पित हैं। प्रणति भावना सन्तो की भक्ति का प्राण है। साख्य भाव में भक्त भगवान को मित्रवत समझता है किन्तु उसमें बराबर का अभिमान बिल्कुल नहीं रहता।

B. **वात्सल्य-** सन्त कवियों ने वात्सल्य भावना की भक्ति का भी यत्र तत्र सुन्दर चित्रण किया है।

C. **दाम्पत्य भाव-** दाम्पत्य भाव की भक्ति में आत्मा तथा परमात्मा के प्रेम और विरह की पराकाष्ठा मिलती है।

D. **भाव भगति-** निर्गुण सन्त भाव भगति का सन्देश देते है। साधक आराध्य से मिलकर एकमेक हो जाता है। जैसे जल ठुलकर जल में मिल जाता है।

सन्त साधना में आत्मशुद्धि पर विशेष बल दिया गया है इसीलिए नैतिकता तथा सदाचरण को आवश्यक माना गया है। सन्तो के लिए सद्गुरू के समान कोई सगा नहीं, आत्म शुद्धि के ज्ञान की तरह कोई दान नहीं। हरि के समान हितैषी और हरिजन से बढ़कर कोई श्रेष्ठ जाति नहीं है।

7. काव्य-सौष्ठव

सन्त काव्य में अनुभूति की प्रामाणिकता अधिक है अभिव्यक्ती की कलात्मकता कम। अपनी वाणी को वे काव्य की सहज मनोरंजकता से ऊपर मानते हैं। सन्तों का काव्य मुक्तकधर्मी है जिसमें दोहा, चौपाई, सोरहा बरबै, कुण्डलियाँ, सवैया, कवित्त, त्रिभंगी आदि छंदों के प्रयोग हुए हैं, छंद रचना में भी सन्तों ने स्वतन्त्रता से काम लिया है इसीलिए लक्षणों की दृष्टि से एकदम खरे नहीं उतरते हैं। संत काव्य परंपरा में उदाहरण के तौर पर कबीर का अध्ययन किया जा सकता है।

3.5.1.2 कबीर

रामानन्द के शिष्यों में कबीर सर्वाधिक प्रतिभाशाली और ओजस्वी थे। इनका जन्म काल संवत् 1455 माना जाता है इनके माता-पिता के रूप में नीरू और नीमा का नाम लिया जाता है।

3.5.1.3 रचनाएँ

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। उनकी वाणियों को शिष्यों ने संग्रहीत किया। कबीर की वाणियों का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। कबीर का आविर्भाव ऐसे काल में हुआ जब मुस्लिम तथा हिन्दू संस्कृति की पारस्परिक टकराहट हो रही थी। हिन्दू जनता जितनी सिकुड़ती थी मुस्लिम शासक उसे उतना ही दबोचते थे। हिन्दू धर्म अनेक मत-मतान्तरों में विभक्त होकर सामाजिक सुदृढ़ता एवं जन आस्था को सुरक्षित रखने में अक्षम हो रहा था। उसमें बाह्यडम्बर, कट्टरता एवं विद्वेष बढ़ रहा था। कबीर ने धर्म के विरोधमूलक तत्वों का खंडन करके हिन्दू-मुस्लिम धर्म के शाश्वत भावों को लेकर ऐसे सर्वजनीन धर्म की प्रतिष्ठा की जो किसी भी जाति, वर्ग, वर्ण के लिए ग्राहय हो सकता था। बाह्याडम्बरों के खिलाफ डटकर खड़े होने में कबीर को सिद्धों ने तेज धारदार भाषा दी। कबीर की अक्खड़ता तथा रूक्षता में सूफियों में प्रेम का अमृत डाला। रामरस के मेल से कबीर ने ऐसा धार्मिक पाक तैयार किया कि उसमें लोक, परलोक, दर्शन, ज्ञान, कर्म योग सभी साधनाएं अन्तर्लीन हो गयी।

1. आत्मा

कबीर ने आत्मा परमात्मा में कोई तात्विक भेद नहीं माना आत्मा ब्रह्म का अशं होने के कारण मनुष्य, देवता, योगी अवधूत आदि उपाधियों से परे हैं इसे कबीर घटन्यास से समझाते हैं-

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहरि भीतरि पानी।

फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।।

2. माया

कबीर ने माया को अविद्या रूप में ग्रहण किया। यह माया दीपक नारी के रूप में भोले-2 अज्ञानी पुरुषों को नष्ट कर देती है।

3. जगत

कबीर समस्त जगत् को ब्रह्ममय मानते हैं। सांसारिक बंधनों को माया का स्वरूप मानते हैं।

4. मोक्ष

आत्मा पंचतत्वों से मुक्त होकर ब्रह्म में लीन होना या आत्मा परमात्मा की द्वैतानुभूति का समाप्त हो जाना मुक्ति दशा है।

5. योग-साधना

कबीर के काव्य के प्रारम्भ के हठयोग की साधनाओं का बड़ा पेचीदा वर्णन मिलता है। प्रेम और योग का समन्वय करके कबीर ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

6. भाव-व्यंजना

कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की भक्ति की। आत्मा असीम परमात्मा से बहुत दिनों से बिछुड़ गयी है। उसकी स्मृति उसे बराबर सताया करती है। कबीर की दास्यभाव की भक्ति में दीनता, विनय तथा अधीनता के भाव व्यंजित होते हैं।

7. कबीर की सामाजिक चेतना

कबीर मूलत: वैयक्तिक साधना के प्रचारक थे इसलिए उन्हें विशुद्ध रूप से समाज सुधारक नहीं कहा जा सकता है। सामाजिक एकता के सुदृढ़ आधार धर्म पर कबीर का विशेष ध्यान था। कबीर ने ऊँच-नीच, जाति-पाँति, धर्म-विधर्म का भेद-भाव मिटाने की भरपूर कोशिश की।

8. कबीर की काव्य प्रतिभा

कबीर में काव्य प्रतिभा की कमी न थी। सुधारवादी युक्तियाँ प्रसाद गुणयुक्त है। उपमा, दृष्टांत आदि अलंकार के प्रयोग से प्रासादात्मकता की और भी वृद्धि हुई है। अपनी अभिव्यक्ति को बोधगम्य बनाने के लिए उन्होंने उपमा, रूपक के साथ विविध प्रतीकों का प्रयोग किया। कबीर लौकिक कवि नहीं बल्कि आध्यात्मिक भावों के उद्गाता कवि हैं। रसयोजना की दृष्टि से कंबीर के काव्य में श्रृंगार वात्सल्य तथा शान्त की अभिव्यक्ति है। कबीर का समस्त काव्य मुक्तक शैली में हैं। कबीर की काव्य कला को देखकर रामचन्द्र शुक्ल जी को स्वीकार करना पड़ा- "भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर भी कबीर की उक्तियों में कहीं-2 विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो कबीर को वाणी का 'डिक्टेटर (तानाशाह) तक कह दिया।

कबीर के अतिरिक्त रैदास, दादू, रज्जब, सुंदर दास, मलूक दास, हरिदास निरंजनी, धर्मदास, गुरु नानक, चरणदास, बाबरी साहिब, जगजीवन दास, तुलसी साहब, भीखा साहब, पलटू साहब, अक्षर अनन्य आदि अन्य संत हैं जिन्होंने भक्ति आंदोलन के दौरान संत काव्य परंपरा को आगे बढ़ाया। इनके कार्यों के कारण कई संप्रदाय अस्तित्व में आए जिसमें नानक पंथ, कबीर पंथ, निरंजनी संप्रदाय, दादू पंथ प्रमुख हैं। संतों ने लोक भाषा जिसे सधुक्कड़ी कहा गया है, का प्रयोग किया है। वे दोहा और गेय पदों में अपनी बात करते हैं। उनकी वाणी में सरलता का भाव है, उलट वासियों का भी प्रयोग हुआ है जो सिद्धों, नाथों के प्रभाव स्वरूप है।

3.5.2 सूफी काव्य

संतो ने हिंदू मुस्लिम एकता के लिए यदि बौद्धिक साधना पद्धति का आश्रय ग्रहण करते हुए आक्रोश तथा प्रहार से काम लिया तो सूफियों ने ऐसी रस गंगा प्रवाहित की जिसमें हिंदू मुस्लिम, शिक्षित-अशिक्षित, ऊंच-नीच सभी अवगाहन करके तृप्त हो गए। मध्यकालीन काव्य साधना में सूफियों का महत्वपूर्ण स्थान है। सूफी मत का प्रारंभ सातवीं शताब्दी से माना जाता है। डॉ. ताराचंद ने राजनीति की विशेष भूमिका स्वीकारते हुए लिखा है कि " मोहम्मद साहब द्वारा प्रचारित इस्लाम धर्म के धवल प्रकाश में कई रंग की किरणें मिली हुई थी, राजनीति के शीशे ने उनको अलग-अलग बिखरा दिया।" सूफी मत से प्रभावित प्रेम को केंद्र में लेकर चलने वाली निर्गुण पंथी काव्यधारा ही प्रेम मार्गी सूफी काव्य है। जिसे प्रेमाश्रयी शाखा भी कहा जाता है। भारत में सूफियों का आगमन 12 वीं शताब्दी से माना जाता है। सूफी कवियों ने प्रेम के दो रूप माने हैं- इश्क मिजाजी और इश्क हकीकी। इश्क मिजाजी अर्थात लौकिक प्रेम स्त्री पुरुष का सामान्य प्रेम, इश्क हकीकी अर्थात ईश्वरीय प्रेम। सूफियों के यहां नायक आत्मा के रूप में और नायिका परमात्मा का स्वरूप मानी जाती है। नायक और नायिका का मिलन कई बाधाओं को पार करके होता है। सूफी कवियों ने अपने काव्य के विषय को प्रचलित लोक गाथाओं से लिया है जो कल्पना और इतिहास का अद्‌भुत संयोग है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "कथानक को गति देने के लिए सूफी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है जो परंपरा से भारतीय कथाओं में प्रयोग होती रही हैं, जैसे चित्र दर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उस पर आसक्त होना, पशु पक्षियों की बातचीत से भविष्य की घटना का संकेत आदि। कुछ नई कथानक रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गई हैं- जैसे प्रेम व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियां, राजकुमार का प्रेमी को गिरफ्तार करा लेना आदि। परंतु इन नई कथानक शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। अधिकांश सूफी काव्य का मूल भारतीय लोक गाथाएं हैं।"

सूफी कवियों ने प्रबंधात्मक काव्य की रचना की है। प्रायः दोहा-चौपाई की शैली और अवधी भाषा इन काव्यों की विशेषता है। रहस्यवाद की प्रवृत्ति भी दिखलाई पड़ती है। आत्मा परमात्मा के प्रेम का निरुपण होने के कारण भावात्मक रहस्यवाद तो है ही, इसके अतिरिक्त यौगिक साधना सम्बन्धी बातें होने के कारण साधनात्मक रहस्यवाद भी आया है। सूफियों के रहस्यवाद के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- 'सूफियों का रहस्यवाद अद्वैतवाद भावना पर आश्रित है। रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने प्रिय के रुप में देखता है और उससे मिलने के लिए व्याकुल रहता है। जिस प्रकार मेघ और समुद्र के पानी में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, उसी प्रकार भक्त भगवान में कोई भेद नहीं है दोनों एक ही हैं। फिर भी मेघ का पानी, नदी का रुप धारण करके समुद्र के पानी में मिल जाने को आतुर रहता है। उसी श्रेणी की आतुरता भक्त में भी होती है।

सूफी, कवियों ने अपने प्रेम कथानकों की प्रेमिका को भगवान का प्रतीक माना है। जायसी भी सूफियों की इस भक्ति भावना के अनुसार अपने काव्य में परमात्मा को प्रिया के रुप में देखते हैं, और जगत् के समस्त रूपों को उसकी छाया से उद्भाषित बताते हैं। उनके काव्य में प्रकृति उस परम प्रिय के समागम के लिए उत्कंठित और व्याकुल पाई जाती है।" सूफी काव्य परंपरा काव्यगत और भावगत विशेषताओं की गहनता से पड़ताल करने हेतु उदाहरण के तौर पर मलिक मोहम्मद जायसी और उनकी 'पद्मावत' रचना को केंद्र में रखा जा सकता है-

3.5.2.1 जायसी 'पद्मावत'

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा में जायसी कृत पद्मावत अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। इसकी रचना 947 हिजरी में हुई थी जायसी के जन्म स्थान, तिथि, मृत्यु के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं मिलता। गियर्सन आदि विद्वान मानते हैं कि जायसी किसी अन्य स्थान से आकर जायस में बस गये थे परन्तु जायस निवासियों का दावा है कि जायसी जायस के ही रहने वाले थे। शुक्ल जी ने जायसी की जन्मतिथि 900 हिजरी माना । जायसी की मृत्यु नसरूदीन हुसैन के अनुसार 4 रिजब, 949 हिजरी अर्थात 1592 ई० है। जायसी ने दो गुरुओं का उल्लेख किया है- सैयद असरफ और शेख मोहदी।

जायसी सैयद असरफ की गुरु परम्परा में आते हैं किन्तु प्रौढ़ पर वे मुहिउद्दीन के सम्पर्क में आये जिनकी सेवा में उन्हें सूफी रहस्य साधना के अनेक तथ्यों का ज्ञान प्राप्त हुआ। जायसी कृत पद्मावत अत्यन्त लोकप्रिय काव्य है। पद्मावती की कथा में कल्पना का बाहुल्य, ऐतिहासिकता की झलक मात्र है, इसकी रचना शैली में भारतीय काव्य की कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है। जायसी ने प्रेम की पीर को लोक में स्थायित्व प्रदान करने के लिए पद्मावत की रचना की। प्रेम की पीर का अवसान देह त्याग के महान उत्सर्ग में हुआ है इस निष्कलुष प्रेम की पवित भस्म ही कलुष हाथों में पड़ी।

(क) सौन्दर्य निरूपण

पद्मावती के रूप सौन्दर्य के अंकन में कवि ने परम्परित उपमानों का आश्रय लिया है किन्तु समस्त सृष्टि के सौन्दर्य को निचोड़कर उसने पद्मावती के रूप राशि का सृजन किया हैं जो अपरिमित, अलौकिक तथा दिव्य है। श्रृंगारिक व्यंजना में अध्यात्मिक सकेंत कभी भी हावी नहीं हैं, पद्मावत में गोरा तथा बादल के वीरता पूर्ण प्रसंग में वीर भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

(ख) अलंकार विधान

अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न जायसी का अलंकार विधान सराहनीय है इन्होंने शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का प्रयोग किया है, अनुप्रास, श्लेष, यमक विशेष रूप से नियोजित है। सादृश्यमूलक अर्थालंकारों में उपमा,

रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति के श्लाघनीय प्रयोग हैं कवि द्वारा की गयी हेतुत्प्रेक्षा हिन्दी साहित्य में अनूठी है। लोक जीवन के सफल पर्यवेक्षक जायसी ने लोक उपमानों की सुन्दर नियोजना की है।

(ग) छन्द योजना

पद्मावत की छन्द योजना अपभ्रंश काव्यों की कड़वक बद्ध शैली के समरूप है। इसमें सात चौपाइयों के बाद एक दोहा निबद्ध किया गया है।

(घ) भाषा

पद्मावत की भाषा ठेठ अवधी है जायसी ने तुलसी की तरह अवधी के परिनिष्ठितीकरण की चेष्टा नहीं की बल्कि भाषा की स्वाभाविक प्रकृति की रक्षा करते हुए उसकी सर्जनात्मक क्षमता का दोहन किया। प्रस्तुत-अप्रस्तुत के द्वारा भाव विम्ब विधान जायसी की प्रमुख विशेषता है।

3.5.2.2 सूफी प्रेमाख्यानक काव्य की विशेषताएँ

सूफी प्रेमाख्यानों के सृजन का प्रमुख उद्देश्य है लौकिक प्रेमकथा को अलौकिक प्रेम की गरिमा से मंडित करना तथा ईश्वर का प्रेम के माध्यम से साक्षात्कार करना।

(क) ईश्वर का स्वरूप

सूफी कवियों ने ईश्वर के विषय में भिन्न -2 मतों को प्रस्तुत किया है, मुल्ला दाऊद ईश्वर को सृजनहार तथा एक मानते हैं, उनके विचार पर एकेश्वरवादी मत का स्पष्ट प्रभाव है।

(ख) सृष्टि का मूल कारण प्रेम

जिस प्रकार उपनिषदों में काम को सृष्टि का मूल कारण माना गया है उसी प्रकार सूफियों ने प्रेम को स्पृष्टि का मूल कारण माना है। परमतत्व परमसौन्दर्यवान् है। रूप और प्रेम का अभेद्य सम्बन्ध है संसार में जितने भी रूपों की सृष्टि हुई है, सब में परम रूप का ही भाव है।

(ग) प्रेम मार्ग की दुर्गमता

यह प्रेममार्ग सरल नहीं है बल्कि अनेक कठिनाइयों से भरा है इसमें मृत्यु तक का संकट उपस्थित हो जाता है।

(घ) प्रेम में विरह का महत्व

प्रेम में सयोग की अपेक्षा वियोग की अधिक महता है। जिस शरीर में विरही आत्मा निवास करती है वह अजर अमर हो जाता है, यह विरह भी पूर्व पुण्य के बिना उत्पन्न नहीं होता।

(ड़) प्रेम मार्ग की चार मंजिलें

सूफी सिद्धान्तों में आध्यात्मिक यात्रा की चार मजिलें मानी गयी है। नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत।

(च) प्रेम में शुरू की महता

गुरू ही शिष्य के हृदय में विरह की चिनगारी पैदा करता है वही प्रेम का पंथ प्रदर्शित करता है।

(छ) कथा संगठन

सूफियों ने ऐसे कथानक का गठन किया है जिसका केन्द्रीय तत्व प्रेम है सारी कथा प्रेम साधना के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती है।

(ज) भाव- व्यजंना तथा रस निरूपण

सूफी काव्य का मूल भाव प्रेम है इसीलिए शृगांर इनका अंगी रस है इनमें श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों का विशद वर्णन है। संयोग वर्णन अधिकतर दैहिक है अतएव कहीं-2 मर्यादा की सीमा भी टूट जाती है ऐसे स्थानों पर उदात्त प्रेम भावना न होकर वासना युक्त हो जाती है संयोग की अपेक्षा वियोग के चित्र अधिक सवेदनशील तथा मार्मिक है।

(झ) शिल्प विधि

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य प्रबन्धात्मक कोटि के कथा काव्य है जिनमें प्रेम और सौन्दर्य के निरूपण द्वारा लोकरंजन किया गया है। सूफी कवियों ने लोक परम्परा, फारसी मसनवियों की प्रेरणा तथा निजी सूझ-बूझ से अपभ्रंश काव्य परम्परा में नवीनता तथा मौलिकता का समावेश किया । सूफी प्रेमाख्यानों की भाषा ठेठ अवधी है। अवधी भाषा की तद्भव शब्दावली, मुहावरें तथा लोकोक्तियों के सुन्दर तथा काव्यात्मक प्रयोग करने में सूफी कवियों को विशेष सफलता मिली है। उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक इनके प्रिय अलंकार है। प्रतीक योजना के द्वारा इनके काव्य की अभिव्यजना' शक्ति संवर्धित होती हैं।

3.5.3 कृष्णभक्ति काव्य

विष्णु के दूसरे अवतार के आश्रय से जिस भावना का विकास तथा पल्लवन हुआ उसकी अभिव्यक्ति कृष्णभक्ति काव्य के अन्तर्गत हुई। कृष्ण भक्ति के विकास में आलवार भक्तों का योगदान निःसंदेह रूप से सराहनीय है। कृष्णभक्ति के प्रसार तथा विकास में वैष्णवपुराणों का उल्लेखनीय योगदान है उत्तर भारत में कृष्ण की भक्ति का शास्त्रीय आधार पर प्रचार करने वाले निम्बार्क प्रथम माने जाते हैं। कृष्णकाव्य में माधुर्य की अपेक्षा दास्य और वात्सल्य भावों की प्रधानता है। मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य चित्र, कला, मूर्ति आदि से भी प्रभावित हुआ। हिन्दी में कृष्णकाव्य का प्रारंभ प्राय: विद्यापति से माना जाता है, विद्यापति-पदावली में कृष्ण के मादक श्रृंगारी चित्रों को अकिंत किया गया है इस लिए इसे कृष्णकाव्य तो कह सकते हैं लेकिन कृष्णभक्ति काव्य कहने में संकोच होता है।

3.5.3.1 कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय

मध्यकाल में कृष्णभक्ति का प्रचार-प्रसार साम्प्रदायिक स्तर पर सुनियोजित ढंग से किया गया । सभी सम्प्रदाय कृष्णभक्ति धारा को ही विराट एवं प्रबल मानते हैं। वल्लभ जी ने देशभर में घूम-घूमकर और विद्वानों से शास्त्रार्थ कर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। अंत में ब्रज में उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की। उन्होंने श्री कृष्ण के लीलागान का उपदेश दिया। वल्लभ के पुत्र विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की। इसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य- कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य - कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्ण दास सम्मिलित हैं। अष्टछाप के कवि पुष्टिमार्गी भक्त है, जिन्होंने कृष्ण की लीलाओं को विषय वस्तु बनाकर काव्य प्रणयन किया। इनमें सूरदास, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, उन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। 'सूरसागर' में कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीला के अंतर्गत उन्होंने वात्सल्य और श्रृंगार का जितना सूक्ष्म, स्वाभाविक और मार्मिक अंकन किया है वह समूचे हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। राग और रस के जिस आनंदोत्सव को सूर ने सूरसागर में दिखलाया है वह सहृदय को हमेशा आहलादित करता रहा है। उनकी कविता में समूचा व्रज अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ सजीव हो उठा है।

राधा वल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय (सखी संप्रदाय), गौड़ीय संप्रदाय का भी कृष्ण भक्ति काव्य में महम्वपूर्ण योगदान रहा है। राधा वल्लभ संप्रदाय में श्री कृष्ण से भी ज्यादा राधा को महत्व दिया गया है। श्री कृष्ण के लोक रक्षक रूप की अपेक्षा उनके लोक रंजक रूप को प्रमुखता दी गयी हैं। वात्सल्य और श्रृंगार इन कवियों के प्रधान क्षेत्र हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में भ्रमरगीत प्रसंग का अपना एक अलग महत्व है। भ्रमरगीत गोपियों की निष्ठा और व्यथा के मार्मिक दस्तावेज के रूप में आता है, जहाँ उनकी वचनविदग्धता, वाक चातुरी भी प्रकट होती है। कृष्ण भक्ति काव्य के संदर्भ में, आचार्य शुक्ल कहते हैं- "सब संप्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही अपनाया। पर्याप्त महत्त्व की भावना से उत्पन्न श्रद्धा या पूज्य बुद्धि का अवयव छोड़ देने के कारण कृष्ण के

लोकरक्षक और धर्मसंस्थापक स्वरूप को सामने रखने की आवश्यकता उन्होंने न समझी। भगवान के मर्मस्वरूप को इस प्रकार किनारे रख देने से उसकी ओर आकर्षित होने और आकर्षित करने की प्रवृत्ति का विकास कृष्ण भक्तों में न हो पाया। फल यह हुआ कि कृष्ण भक्त कवि अधिकतर फुटकर श्रृंगारी पदों की रचना में ही लगे रहे। उनकी रचनाओं में न तो जीवन के अनेक गंभीर पक्षों के मार्मिक रूप स्फुरित हुए, न अनेकरूपता आयी।... ... राधा कृष्ण की प्रेम लीला ही सब ने गायी।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 104)

3.5.3.2 कृष्णभक्ति काव्य की विशेषताएँ

काव्यरस को भक्ति रस के रूप में प्रतिष्ठित करना कृष्ण कवियों की एक महान उपलब्ध है। कृष्णभक्तों ने प्रेमलक्षणा भक्ति को वैधी भक्ति की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है। इसीलिए इनके वर्णनों में सामाजिक विधि निषेद लोक और वेद की मर्यादा टूटती दिखाई देती है प्राय: सभी सम्प्रदायों में कांताभाव की भक्ति को स्वीकार किया गया है। कृष्ण की लीला प्रकृति के सुरम्य प्रागंण में सम्पन्न होती है इसीलिए कवियों को प्रकृति चित्रण के पर्याप्त अवसर मिले हैं,प्रकृति चित्रण अधिकतर उद्दीपन रूप में हुआ है। कृष्ण के संयोग तथा वियोग के सुख-दुख से प्रकृति भी अछूती नहीं है। जिस तरह कृष्ण काव्य के पीछे एक दार्शनिक आधार है उसी तरह काव्य शास्त्रीय आधार भी है। कृष्णकाव्य में अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक स्थितियों का अंकन हुआ है। समाज को भौतिक दृष्टि, उत्सव, संस्कार, खान-पान, शासकों का अत्याचार, धार्मिक विडम्बना की छाप कृष्ण काव्य पर परिलक्षित होती है। कृष्णभक्त कवियों ने मुक्तक शैली को अपनाया है। इन कवियों ने ब्रजभाषा को काव्यभाषा का स्वरूप दिया है। तत्सम, तद्भव विदेशी शब्दों तथा मुहावरों के प्रयोग से इनकी भाषा सशक्त बन गयी है। काव्य गुणों तथा अलंकारों के द्वारा इन्होंने भाषा को समृद्ध बनाया। कृष्णकाव्य ने अपनी भावात्मक सघनता तथा कलात्मक उच्चता के कारण भारतीय जनमानस पर व्यापक स्थायी प्रभाव अकिंत किया जो आज वैज्ञानिक युग में भी अमिट बना हुआ है।

कृष्ण भक्ति काव्य समझने के लिए उदाहरण के तौर पर कृष्ण भक्ति शाखा और अष्टछाप के प्रमुख कवि सूरदास और उनकी रचनाओं का अध्ययन किया जा सकता है-

3.5.3.3 सूरदास

सूरदास के जन्मस्थान के विषय में रूनकता तथा सीही प्रसिद्ध है परन्तु सीही अपेक्षाकृत अधिक प्रमाणिक है। रामचन्द्र शुक्त तथा मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म 1540 संवत् तथा मृत्यु 1620 निश्चित किया है। सूरदास सारस्वत ब्राह्मण माने जाते हैं। सूरदास ने रूप रंग तथा विभिन्न चेष्टाओं एवं भगिमाओं का इतना सूक्ष्म चित्रण किया है कि उनके जन्मांध होने पर सहज विश्वास नहीं किया जा सकता है। सूरदास के मन में वैराग्य की प्रवृत्ति बहुत बचपन से ही थी। सूरदास के परलोकवास की तिथि शुक्ल जी के अनुसार संवत् 1620, रामकुमार वर्मा के अनुसार 1642 है।

(क) कृतियाँ

सूरदास कृत 25 ग्रन्थों का पता चलता है किन्तु ये या तो सूरसागर के ही अशं है या अप्रमाणिक है। कुछ विद्वान सूरसागर, सूरसारावली तथा साहित्य लहरी को प्रामाणिक मानते हैं।

(ख) सूरसागर

चौरासी वैष्णवन की वार्ता तथा सूरदास की वार्ता में सूरसागर में सहस्रावधि तथा लक्षावधि पदों की सूचना मिलती है। किन्तु आधुनिक अनुसंधानों के फलस्वरूप आठ-दस हजार पद ही उपलब्ध होते हैं सूरसागर की कथा का प्रमुख स्रोत श्रीमद्भागवत है। परंतु सूरसागर भागवत का भाषानुवाद मात्र नहीं है। बल्कि सूर की मौलिक प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन है।

(ग) सूर सारावली

सूर सारावली के आराम्भक पदों की रचना सूरसागर के समरूप है अन्तिम टेक में शब्दों का किंचित हेर-फेर मात्र किया गया है।

(घ) साहित्य लहरी

इसमें गूढ़ शैली में नायिका भेद तथा अलंकार आदि के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

(ड़) भक्ति भावना

भक्तिरस में निष्णात् सूरदास की भक्ति का अक्षय स्रोत समस्त मानवता की कल्याण कामना से सम्पृक्त है। मनुष्य हरिभक्ति से विमुख होकर सांसारिकता में आकंठ मग्न रहता है। सूरदास के विनय पदों में दैन्य भाव की प्रतिष्ठा है। सूर ने नवधा भक्ति को प्रेमलक्षणा भक्ति का साधन मात्र माना है।

(च) चिन्तन पक्ष

सूर के परमब्रहम कृष्ण है जो सभी देवताओं से श्रेष्ठ है। इसकी प्रकृति अद्वैत है।

(छ) काव्य-सौष्ठव

सूरदास श्रेष्ठ भक्त होने के साथ ही उच्चकोटि के कवि भी हैं, मानव मन की अतल गहराई में उतरने की उनमें अद्भुत क्षमता है सूर का वात्सल्य तथा श्रृंगार चित्रण मनोहर है, सूर का वात्सल्य शास्त्रीय रस में निष्पत्ति के अनुकूल है सूरदास पुरुष होते हुए भी मां के सुकोमल हृदय से परिपूर्ण थे। इसीलिए वात्सल्य की इतनी सघन

अनुभूति कर सके। वहीं गोपियों की प्रेम साधना, लौकिकता से अलौकिकता को अभिव्यक्ति करने की एक जागृत प्रक्रिया है गोपियाँ कृष्ण के अगं -प्रत्यंग पर मुग्ध हो जाती हैं।

सूरदास की शैली गीतिपरक पद शैली है। सूर की रचना में गीति शैली के सभी गुण मिलते हैं। सहज अभिव्यक्ति, अकृत्रिम शब्द योजना उनकी विशेषताएँ हैं। सूर की वर्ण योजना में माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणों का समुचित विधान मिलता है।

3.5.4 राम काव्य

रामकथा युग-युग से भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को अनुप्रमाणित करती रही है, राम के जीवन में भारतीय आदर्शों के चरम विकास के दर्शन होते हैं इसलिए उनको मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं। भक्ति संप्रदाय में वे भगवान के अवतार माने जाते हैं, अतः उनके चारित्रिक गुण व जीवन के ज्ञान बड़े उत्साह से प्राप्त किया जाता है। उपासना के विभिन्न साधनों द्वारा भक्त उन तक पहुंचने का प्रयत्न करता है। आदिकाल से ही राम काव्य की एक दीर्घ परम्परा रही है। दरअसल उच्च मानवीय मूल्यों पर आधारित राम का व्यक्तित्व एवं जीवन हमेशा रचनाकारों को आकृष्ट करता रहा है। भारतीय संस्कृति के वह केन्द्रीय चरित्र हैं। राम एक ऐतिहासिक चरित्र हैं या मिथकीय यह विवाद का मुद्दा भले हो, किन्तु भारतीय समाज-संस्कृति में राम की अत्यंत गहरी और व्यापक उपस्थिति एक यथार्थ है। बहरहाल आदिकवि वाल्मीकि कृत आदिग्रंथ 'रामायण' में सर्वप्रथम रामकथा का निरूपण किया गया है। वाल्मीकि के पूर्व रामकथा की वाचिक और लिखित परम्परा निश्चित तौर पर रही होगी। लेकिन अभी तक इसका कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध हुआ है। 'रामायण' का रचनाकाल चौथी सदी ई० पू० माना जाता है। रामायण का भिन्न क्षेत्रों समाजों, भाषाओं में भिन्न00भिन्न रूप में रूपांतर विकास हुआ है। भारत में ही नहीं विदेशों में भी रामकथा का खूब प्रचार प्रसार हुआ। संस्कृत, पालि, प्राकृत, तमिल, तेलगु, कन्नड़, गुजराती, बंग्ला, हिन्दी, कश्मीरी, असमी, नेपाली आदि कई भाषाओं में रामकथा का प्रणयन हुआ। इनमें कालिदास कृत 'रघुवंश' भवभूति कृत उत्तर रामचरित', कम्बन कृत 'तमिल रामायण, कृत्तिवास कृत बंग्ला में 'कृतिवासीय रामायण' तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस', माधव कन्दलि कृत 'असमिया रामायण' इत्यादि को विशेष ख्याति मिली।

पूर्व परम्परा से आगत विष्णु के दो अवतारों राम और कृष्ण को भक्ति का आश्रय बनाकर मध्यकाल में सगुण भक्ति का व्यापक स्वरूप निर्मित हुआ। मध्यकालीन हिन्दी सगुण भक्ति भावना की सृष्टि में धार्मिक चिन्तन की सहज परम्परा, लोक चेतना तथा दार्शनिक निगूढ़ता का सम्मिलित योगदान है। मध्यकाल में भक्ति के आश्रय रूप में विकसित रामकथा का स्रोत अत्यन्त प्राचीन है। पुराणों ने रामकथा को विविधता तथा सम्पन्नता प्रदान की । रामकथा की यह व्यापक परम्परा मध्ययुगीन परिवेश में प्रबल वेग से प्रवाहित हुई। उत्तरी भारत में रामभक्ति के प्रमुख प्रवर्तक रामानन्द का समय शुक्ल जी ने 1450-1525 ई0 माना।

तुलसी के पूर्व हिन्दी में रामकथा के आधार पर सशक्त रचना करने वाले कवियों का लगभग अभाव है। रामानन्द रचित एक मात्र ग्रन्थ 'रामरक्षा स्रोत' उपलब्ध हो सका है। रामकाव्य परम्परा में सबसे अधिक ओजस्वी तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व तुलसीदास का है। रामकाव्य को इतनी अधिक लोकप्रियता तथा प्रचार-प्रसार का श्रेय तुलसी के कवि- व्यक्तित्व को है। उन्होंने रामकथा को व्यापक फलक पर प्रतिष्ठित कर जनता का कंठहार बना दिया। समन्वय का विराट चेष्टा और लोकमंगल के विधान के कारण तुलसी को अपार लोकप्रियता मिली। आचार्य शुक्ल के अनुसार 'जगत् प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरूपण किया था वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक प्रसार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी (सं. 1073) ने खड़ा किया।

राम काव्य परंपरा को तात्विक दृष्टि से अध्ययन करने के लिए उदाहरण के तौर पर गोस्वामी तुलसीदास और उनकी रचनाओं को आधार बनाया जा सकता है-

3.5.4.1 तुलसीदास

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने समस्त बाह्य और अन्तः साक्ष्यों का परीक्षण करके तुलसी की जन्मतिथि भादों सदी 11 मंगलवार, संवत् 1589 निश्चित की है। तुलसी के जन्म स्थान के सम्बन्ध में सोरो और राजापुर दो नामों की चर्चा की जाती है। इनकी माता का नाम हुलसी, पिता का नाम आत्माराम दुबे था। वैराग्य से पूर्व तुलसी अपनी परिणीता पत्नी से बुरी तरह से आसक्त थे। वैराग्य तथा भक्ति की प्रेरणा भी इन्हें पत्नी से ही मिली। तुलसी के शरीर त्याग की सूचना देने वाली अधोलिखित पक्तियाँ प्रसिद्ध है-

संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।

सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।।

मृत्यु संवत् 1680 तो सर्वमान्य है किन्तु सावन शुक्ला सप्तमी के बदले 'सावन श्यामा तीज सनि' ज्यादा प्रामाणिक है।

(क) रचनाएँ

1. **रामलला नहछू**- इसमें राम के विवाह के समय के नहछू का वर्णन है।
2. **रामाज्ञा प्रश्न-** इसमें राम की कथा वर्णित है।
3. **जानकी मंगल-** इस की कथा रामचरितमानस के समान है।

4. रामचरित मानस- यह तुलसीदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है इसकी रचना तिथि संवत् 1631 है। इसके अतिरिक्त पार्वती मंगल, गीतावली, विनयपत्रिका, बरबै, दोहावली, कवितावली आदि प्रमुख हैं।

(ख) तुलसी का तत्व चिन्तन

भारतीय विद्वानों ने तुलसी साहित्य पर अद्वैतवाद, वेदान्त शंकर अद्वैत आदि के प्रभावों को लक्षित किया है किन्तु तुलसी ने उसका अन्धानुकरण की अपेक्षा उन्हें अपनी मौलिकता से रंजित करके ग्रहण किया।

(ग) ब्रह्म

तुलसी के राम परम ब्रहम है वे समस्त प्राणियों में व्याप्त है। इसमें सगुण और निर्गुण दोनों का पर्यवसान होता है।

(घ) माया

वह आदिशक्ति है जिसमें समस्त सृष्टि रचना, स्थिति और संहार होता है सभी देवता और जीव माया के वशीभूत है।

(ड़) जगत

राम के द्वारा प्रेरित माया से जगत की उत्पत्ति हुई।

(च) जीव

ईश्वर का अशं जीव अविनाशी है इस जीव को द्वैत बुद्धि के कारण ईश्वर माया और अपने यथार्थ का ज्ञान नहीं हो पाता। ब्रह्म ज्ञान होने पर जीव स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है।

(छ) भक्ति भावना

तुलसीदास सगुणोपासक भक्त थे। भक्ति में रामकृपा की अति महत्ता है। तुलसी ने सेवक सेव्य भाव की भक्ति को विशेष महत्व दिया है। रामकथा श्रवण से भक्ति जागृत होती है। भक्ति में नाम की महिमा निर्गुण और सगुण दोनों में श्रेष्ठ है। राम भक्त सालोक्य मुक्ति की इच्छा रखते हैं।

(ज) भाव व्यंजना

भक्ति के क्षेत्र में निवृत्ति को महत्ता प्रदान करते हुए भी तुलसी जीवन के विविध प्रसंगों की अच्छी पहचान रखते हैं भ्रातृत्व स्नेह के चित्रण में तुलसी अद्वितीय हैं। इनका वात्सल्य वर्णन पारिवारिक अधिक है शास्त्रीय कम। तुलसी के काव्य में क्रोध की भाव व्यजंना अत्यन्त सात्विक है विनयपत्रिका में संसार की नश्वरता के चित्रों में शान्तरस की पुष्टि होती है। तुलसी मर्यादावादी भक्त थे अतएव इनका श्रृंगार वर्णन अत्यधिक शिष्ट और मर्यादित है। श्रृंगार के संदर्भ में दाम्पत्य रति के छोटे-छोटे प्रसंगों की उद्‌भावना तुलसी की अपनी विशेषता है।

(झ) तुलसी की नारी विषयक दृष्टि

तुलसी के काव्य में नारी के चरित्र का व्यापक वर्णन मिलता है तुलसी एक तरफ भक्ति की विरक्ति पूर्ण परम्परा से जुड़े हैं जिसमें नारी को सांसारिकता में फंसाने का प्रमुख कारण माना गया है। तुलसी के युग में नारी की मर्यादा तथा प्रतिष्ठा क्षीण हो गयी थी।

(ट) समन्वय भावना

तुलसी के युग में धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में विषमता वैमनस्य और विभेद का आधिक्य था। तुलसी ने भक्ति में ज्ञान की प्रतिष्ठा करके ज्ञानियों और भक्तों के पारस्परिक मतभेदों को दूर किया। साहित्य और भाषा के क्षेत्र में तुलसी की समन्वय भावना कम सराहनीय नहीं है। ब्रजभाषा, अवधी तथा संस्कृत तीनो का समन्वय करके तुलसी ने प्रचलित समस्त काव्य शैलियों का मजुंल प्रयोग किया। अतः तुलसी को भक्त एवं महाकवि के साथ लोकनायक की संज्ञा दी जा सकती है।

(ठ) भाषा शैली

भाषा कवि और उसके विचारों की वाहिका है, तुलसी ने ब्रज तथा खड़ीबोली की अपेक्षा अवधी का अधिक प्रयोग किया। अलंकार, रीति तथा विविध काव्य गुण कमलों से उनकी भाषा सुगन्धित है। अलंकार, छंद, भावों के बीच सुन्दर सामंजस्य है।

3.5.4.2 रामभक्ति काव्य की विशेषताएं

रामभक्ति में तुलसी के समान कवियों का अभाव है अत: रामकाव्य का निर्धारण तुलसी काव्य के आधार पर किया जाता है। संसार राम की लीलाओं का विस्तार है, उनका सौन्दर्य भक्तों के मनमधुकर को अनुरक्त करता है रामकाव्य अपनी उदार चेतना में अन्य उपासना को समेट लेता है। वैराग्य पर बल देते हुए भी ये कवि जीवन राग के सफल उद्गाता है, रामभक्ति कवियों की कलात्मक चेतना ईश्वर की लीलाओं को मानवीय संघर्ष की कहानी बना देती है। रामकाव्य में भावनात्मक गहराई तथा कलात्मक ऊंचाई दोनों है। रामकाव्य की भाषा

ठेठ अवधी हैं रसिक सम्प्रदाय ने ब्रजभाषा का अत्यधिक प्रयोग किया है। अवधी को परिमार्जित एवं सुसंस्कृत करके परिनिष्ठित भाषा के रूप में ढाला गया। रामकाव्य की भाषा अधिकांशत: भावानुकूल रसात्मक तथा स्वाभाविक है।

3.6 भक्तिकाव्य की प्रवृत्तियां

गियर्सन के शब्दों में भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। उदात्त भाव, प्रभावी अभिव्यक्ति, प्रेरक आदर्शों, मूल्यों, मानवीयता की उत्कृष्ट भूमि, युगबोध, लोकोन्मुखता आदि प्रवृतियां भक्ति काल को एक प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत करती हैं। भक्ति काल अपने इन्हीं गुणों के कारण सदैव समाज का पथ प्रदर्शक बना रहा और आध्यात्मिक और दार्शनिक रस की अनुभूति लोगों को कराता रहा है। हिंदी साहित्य के भक्ति काव्य की 4 शाखाएं हैं- संत काव्य, प्रेम मार्गी सूफी काव्य, राम भक्ति शाखा, कृष्ण भक्ति शाखा। सभी शाखाएं अलग-अलग वैशिष्ट्य और विशेषता लिए हुए हैं परंतु सभी के मूल में भक्ति ही है। सब में ईश्वर के प्रति राग, अनन्य निष्ठा, सत्य, शील सदाचार युक्त जीवन, सांसारिक मायामोह से विरक्ति, कर्मकांड का विरोध, गुरु महिमा का वर्णन, अहं का विसर्जन आदि सभी शाखाओं में व्याप्त है। कुछ प्रमुख विशेषताएं और प्रवृतियां निम्नलिखित हैं-

3.6.1 ईश्वर के उत्कट प्रेम एवं अनन्य निष्ठा

ईश्वर के प्रति उत्कट राग, अनन्य निष्ठा, सर्वस्व समर्पण की भावना भक्ति काव्य की सभी धाराओं में विद्यमान है। सभी भक्त कवि भगवत्प्रेम में पूर्णतया अनुरक्त, विह्वल दिखलाई पड़ते है। कबीर प्रियतम परमात्मा के विरह में व्याकुल होकर कहते हैं-

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़याँ, राम पुकारि पुकारि।।

सूफी काव्य में तो 'प्रेम तत्व' को ही सर्वाधिक महत्ता दी गई हैं। मीरा गिरधर गोपाल को अपना सर्वस्व मान, उनके प्रेम में बावरी हो उठती है-

हे री मैं तो प्रेम दीवानी,
मेरा दरद न जाने कोई।

सूर की गोपियाँ कृष्ण के प्रति इतना समर्पित हैं कि वे उद्धव के मुक्ति रूपी मणि के प्रलोभन को ठुकराकर कृष्ण की विहाग्नि में तपना स्वीकार करती हैं। उद्धव के लाख समझाने बुझाने के बावजूद गोपियाँ के

प्रेम पर कोई असर नहीं होता, हरि तो उनके लिए 'हारिल की लकड़ी' के समान हैं। तुलसी के तो एकमात्र बल, एकमात्र भरोसा उनके प्रभु राम हैं-

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।।

3.6.2 अहं का विगलन

भक्त कवि परमात्मा के पास अपने अहं को पूर्णतया विसर्जित करके जाते हैं। प्रभु के समक्ष उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं, प्रभु की सेवा, उनका सेवक बनने में ही वे अपनी सार्थकता देखते हैं। कबीर अपने को 'राम का गुलाम', 'राम का कुत्ता' कहते है। सूर का कहना है- *सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये।*

3.6.3 सांसारिक विषय-वासनाओं के प्रति उदासीनता

भक्त कवि प्रभु भक्ति में सबसे बड़ी बाधा माया मोह को मानते हैं। माया मोह के बंधन में फँसकर मनुष्य जीवन, जगत को सत्य, शाश्वत मानकर सांसारिकता में लिप्त और परमात्मा से विमुख रहता है। भक्त कवियों के यहाँ सांसारिक विषय-वासनाओं को निस्सार माना गया है, उनसे अलिप्त रहने का उपदेश दिया गया है। यह निर्वेद का भाव कबीर, सूर, तुलसी, जायसी सभी के यहाँ मिलता है। जीवन की क्षण भंगुरता की ओर ईशारा करते हुए कबीर कहते हैं-

माली आवत देखिकै कालियाँ करीं पुकार।
फूली-फूली चुनि लई, काल्हि हमारी बारि।।

जिस शरीर और जीवन को मनुष्य ने सत्य समझ लिया है उसकी वास्तविकता क्या है, इसे बतलाते हुए सूर ने लिखा हैं-

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।

3.6.4 गुरु महिमा

गुरु की महत्ता निर्गुण, सगुण दोनों भक्त कवियों ने स्वीकार की है। दरअसल गुरु ही सत्य का बोध कराता है, मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाता है। वह पथ प्रदर्शक हैं, सच्चा हितैषी है। इसीलिए कबीर ने गुरु को भगवान से भी ऊँचा दर्जा दिया है-

गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।।

मानस में तुलसी गुरु की वंदना करते हुए लिखते है-

बंदउ गुरु पद पदुम परागा,सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।

3.6.5 नामस्मरण का महत्व

भक्त कवियों ने पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ प्रभु का नाम जपने को भक्ति का सबसे सरलतम रूप माना है। मात्र नाम-स्मरण से मनुष्य प्रभु की कृपा का पात्र बन जाता, भव-बंधन से मुक्त हो जाता है। इसीलिए राम-नाम को तत्व मानते हुए कबीर ने कहा है 'कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल' नाम की महिमा का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है-

आदि नाम पारस अहे, मन है मैला लोह।

परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।

नाम स्मरण को प्रमुखता देकर भक्त कवियों ने भक्ति को शास्त्रों और कर्मकाण्डों को जकड़बंदी से मुक्त कर दिया उसे सरल और लोकग्राह्य बना दिया।

3.6.6 संतों के प्रति श्रद्धा एवं सत्संग पर बल

भक्ति काव्य में पवित्रतायुक्त सीधा-सरल जीवन जीने वाले परमात्मा की भक्ति में लीन, सांसारिकता से उदासीन साधु पुरुषों के प्रति असीम श्रद्धा-सम्मान प्रकट किया गया है। रैदास लिखते हैं वह गाँव, स्थान, कुल, घर-परिवार धन्य है जहाँ साधु पुरुष का जन्म होता है। जिस प्रकार पुष्प के सम्पर्क से सब अंग समान रूप से सुवासित होते हैं, उसी तरह संतों की संग भी होता है, तुलसी के अनुसार-

बंदहु संत समान चित हित अनहित नहिं दोय।

अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोय।।

3.6.8 मानवतावादी दृष्टि

भक्त कवियों ने भक्तिमार्ग में सभी मनुष्यों को समान मानते हुए, वर्गगत, वर्णगत भेद भाव का विरोध किया है। सभी मनुष्य परमात्मा के अंश हैं, चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, राजा हो या रंक सब में उसी परमात्मा का वास है।

जाति-पांति पूछ न कोई।

हरि को भजै सो हरि का होई।।

भक्ति काव्य का मूलमंत्र है। मनुष्य सत्य को भक्ति आंदोलन के दौरान सर्वप्रमुखता दी गई। कबीर अत्यंत तीखे ढंग से जाति-पाँतिगत भेद-भाव का विरोध करते हैं। यद्यपि तुलसी के यहाँ वर्णाश्रमधर्म के प्रति एक आस्था है, किंतु उन्होंने भी सभी मनुष्यों को समान माना है तभी तो वह कहते हैं-

सिया राम मय सब जग जानी
करहु प्रनाम जोरि जुग पानि।

दरअसल भक्त कवि परस्पर राग-विश्वास पर आधारित एक उदार और मानवीय समाज के अभिलाषी है।

3.6.9 लोकोन्मुखता

गहरी लोक संपृक्ति भक्त कवियों की विशेषता है। वे जन सामान्य के बीच से आए थे और उन्हीं के बीच रहकर काव्य रचना की। उन्होंने धर्म और भक्ति को सहज-सरल् रूप देकर लोकग्राह्य बनाया। 'नाम स्मरण' को प्राथमिकता देने वाली उनकी भक्ति साधनविहीन और निरक्षर जनता जो शास्त्रोक्त कर्मकाण्डों को सम्पन्न करने तथा शास्त्रों का अध्ययन मनन करने में असमर्थ थी, के लिए अत्यंत सुगम थी। यही नहीं सदियों से उपेक्षित वंचित वर्ग को भक्ति का अधिकारी घोषित कर उन्होंने भक्तिमार्ग को अत्यंत उदार और मानवीय बना दिया। रागमूलक जिस भक्ति का कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा ने प्रचार किया उससे जनसामान्य को आध्यात्मिक तृप्ति ही नहीं मिलती है, उसके जीवन में एक सरसता का संचार भी होता है, उसे शक्ति एवं स्फूर्ति मिलती है।

भक्ति काव्य लोक मंगलकारी है। यही नहीं लोक संस्कृति एवं लोक परिवेश का भी इन रचनाओं जीवंत चित्रण हुआ। जायसी के 'पद्मावत' में अवध की लोक संस्कृति और सूर के यहाँ ब्रज की लोक संस्कृति सजीव हो उठी है। भक्त कवि अपनी बात को प्रकट करने के लिए उस समय की प्रचलित लोक भाषाओं का आश्रय लेते हैं, लोक से ही उपमानों, बिम्बों, प्रतीकों का चुनाव करते हुए सहज-सरस शैली में अपनी बात रखते हैं। वास्तव में भक्ति काव्य लोक भाषा में रचित और लोक को संबोधित कविता है। सामंती अभिजात्य और रूढ़ियों को नकार यहाँ लोक की प्रतिष्ठा हुई है। अपनी लोक धर्मी चेतना के कारण ही भक्ति काव्य इतना सरस और प्रभावी बन पड़ा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विभिन्न धाराओं में विकसित होने वाले भक्ति काव्य की कुछ आधारभूत विशेषताएं हैं जो सभी धाराओं में समान रूप से दिखलाई पड़ती है।

3.7 प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

भक्ति काल के प्रमुख रचनाकारों का वर्णन भक्ति काल की शाखाओं के आधार पर निम्नलिखित हैं-

3.7.1 संत काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

संत काव्य के प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

रचनाकार	रचना
कबीर	बीजक (धर्मदास द्वारा संकलित)
नानक	जपुजी, असा दी वार, रहिरास, साहिला, नसीहत नामा
हरिदास निरंजनी	अष्टपदी जोग पग्रंथ, ब्रह्मस्तुति, हंसप्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजायोग ग्रंथ, समाधिजोग, ग्रंथ, संग्रामजोग ग्रंथ
संतदास एवं जगन्नाथ दास (संग्रहकर्त्ता)	'हरडे वाणी- (दादू की वाणियों का संग्रह)
रज्जब	'अंगवधू' (दादू की वाणियों का संग्रह)
मलूकदास	ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तिविवेक, ज्ञानपरोछि, रामअवतार लीला, ब्रजलीला, ध्रुवचरित, विभवविभूति, सुखसागर, शब्द,बारहखड़ी
सुंदरदास	ज्ञानसमुद्र, सुंदरविलास
रज्जब	सुब्बंगी
गुरु अर्जुनदेव	सुखमनी, बावन अखरी, बारहमासा
निपट निरंजन स्वामी	शांत सरसी, निरंजन-संग्रह

3.7.2 सूफी काव्य: प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

सूफी काव्य परंपरा में जायसी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। जायसी के अतिरिक्त इस परम्परा में कुतुबन, मुल्ला दाऊद, मंझन, उसमान, शेखनवी, कासिम शाह, नूरमुहम्मद आदि कवि भी हैं। प्रेममार्गी सूफी काव्य परम्परा की प्रथम कृति कौन सी, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। आचार्य शुक्ल के अनुसार कुतुबन कृत 'मृगावती' इस धारा की प्रथम कृति है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' को, राम कुमार वर्मा मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन' को पहली कृति मानते हैं हिन्दी के प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य निम्नलिखित हैं-

ग्रंथ	रचनाकार
हंसावली (1370 ई.)	असाइत
चंदायन (1379 ई.)	मुल्ला दाऊद
लखमसेन पद्मावती कथा (1459)	दामोदर कवि

सत्यवती कथा (1501)	ईश्वरदास
मृगावती (1503)	कुतुबन
माधवानल कामकंदला (1527)	गणपति
पद्मावत (1540)	जायसी
मधुमालती (1545)	मंझन
रूपमंजरी (1568)	नंददास
प्रेमविलास प्रेमलता की कथा (1556)	जटमल
छिताईवार्ता (1590)	नारायण दास
माधवानल कामकंदला (1584)	आलम
चित्रावली (1613)	उसमान
रसरतन (1618)	पुहकर
ज्ञानदीप (1619)	शेखनवी
नल-दमयंती (1625)	नरपति व्यास
नल चरित्र (1641)	कुंद सिंह
हंस जवाहिर (1731)	कासिम शाह
इंद्रावती (1744)	नूरमुहम्मद
अनुराग बाँसुरी (1764)	नूरमुहम्मद
कथा रतनावली, कथा कनकावती, कथा कंवलावति, कथा मोहिनी, कथा कलंदर (रचनाकाल 1612-1664 ई. तक)	जान कवि

3.7.3 कृष्ण काव्य : प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

कृष्ण भक्ति काव्य प्रायः मुक्तकों के रूप में मिलता है, प्रबंध काव्य कम लिखे गए। भाषा पर सामान्य तौर पर ब्रज रही। कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं-

रचना	**रचनाकार**
सूरदास	सूर सागर, साहित्य लहरी, सूर सूरावली
नंददास	अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, रस मंजरी, रूप मंजरी,

	विरह मंजरी, प्रेम बाहरखड़ी, श्याम सगाई, सुदामा चरित, रूक्मिणी मंगल, भंवरगीत, रामपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, गोवर्धनलीला, दशमस्कंधभाषा, नंददास पदावली
हित हरिवंश	हित चौरासी, स्फुटवाणी, संस्कृत में राधा सुधनिधि, यमुनाष्टक
चतुर्भुज दास	भक्ति प्रताप, द्वादशयज्ञ, हित जू को मंगल
हरिदास	सिद्धांत के पद, केलिमाल
मीरा	गीत गोविंद की टीका नरसी जी का मायरा, राग सोरठा का पद, मलार राग, राग गोविंद, सत्यभामानु रूसणं, मीरा की गरबी, रूक्मणी मंगल, नरसी मेहता की हुण्डी,चरीत, स्फुट पद
रसखान	सुजान रसखान, प्रेमवाटिका, दानलीला, अष्टयाम

3.7.4 राम काव्य : प्रमुख रचनाएं और रचनाकार

रामभक्ति शाखा के प्रमुख रचनाकार और उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

रचनाकार	**रचना**
विष्णुदास	महाभारत कथा, रूक्मिणी मंगल, स्वर्गारोहण, स्नेहलीला
रामानंद	वैष्णव मताब्ज भाष्कर, श्री रामार्चन पद्धति, रामरक्षास्त्रोत
अग्रदास	ध्यान मंजरी, अष्टयाम, रामभजनमंजरी, उपासना-बावनी, पदावली
ईश्वरदास	भरत मिलाप, अंगदपैज
तुलसीदास	दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरितामानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली
नाभादास	भक्तमाल, अष्टयाम
केशवदास	रामचंद्रिका
प्राणचंद चौहान	रामायण महानाटक

माधवदास चारण	राम रासो, अध्यात्म रामायण
हृदयराम	हनुमन्नाटक
नरहरि बारहट	पौरुषेय रामायण
लालदास	अवध विलास

3.8 भक्तिकालीन साहित्य और लोक जागरण

भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। यह सिर्फ आध्यात्मिक पारितोष ही नहीं प्रदान करता, सन्मार्ग पर चलने की, एक उदार मानवीय समाज निर्मित करने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। भक्त कवियों ने भक्ति को सहज-सरल बनाकर उसे शास्त्र- पुरोहित कर्मकाण्ड-बाह्याचार की जकड़बंदी से मुक्त किया, इससे सामान्य मनुष्य भी भक्ति का अधिकारी बन सका। भक्ति काव्य वर्गगत-वर्णगत-संप्रदायगत भेदभाव के ऊपर मानुष सत्य को महत्व देता है। जिस सत्य शील-सदाचार युक्त जीवन पद्धति की इन कवियों ने वकालत की है वह मनुष्य के जीवन को नैतिक बनाता है। इस काव्य, विशेषकर संत कवियों ने जिस तरह जातिगत भेद भाव को अर्थहीन साबित करते हुए मानव मात्र की एकता समता का प्रतिपादन किया हैं उससे सदियों से वंचित उपेक्षित वर्ग को नया बल मिलता है। सूफी कवियों ने हिन्दू-मुस्लिम की भावात्मक एकता को प्रोत्साहित किया। रामकाव्य से समाज को जीवन मानवीय सम्बन्धों का आदर्श मिलता है। तुलसी ने विविध प्रवृत्तियों में समन्वय की जो चेष्टा की है, वह अंततः लोक मंगलकारी सिद्ध होता है। कृष्णभक्ति काव्य से समाज में राग-रस का संचार होता हैं।

भक्त कवियों ने संस्कृत, फारसी को न अपनाकर लोकभाषा को अपनाया, इससे लोक भाषाओं का साहित्यिक विकास होता है। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी और ब्रज भक्तिकाव्य की ही देन है। उच्चादर्शों से परिचालित होने के कारण ही भक्ति काव्य इतना प्रेरक और प्रभावी सिद्ध हुआ।

3.9 भक्तिकालीन कवियों की भाषा दृष्टि एवं काव्य भाषा

भक्तिकालीन कवियों की भाषा दृष्टि एवं काव्यभाषा का सामान्य तौर पर वर्णन इकाई-3 के भक्ति साहित्य की विभिन्न धाराएं नामक शीर्षक के अंतर्गत किया जा चुका है। (अध्ययन हेतु देखें इकाई-3.5 पेज-11)

3.10 सारांश

भक्तिकाव्य दो धाराओं में विभक्त है- निर्गुण भक्त काव्य और सगुण भक्ति काव्या इनका भी क्रमशः संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य और रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य में विभाजन हुआ है। भक्ति काव्य की

विविध धाराओं की विभिन्नता के बावजूद, ऐसी कुछ समान विशेषताएँ हैं जो समूचे भक्ति काव्य में दिखलाई पड़ती हैं यथा- भक्ति, गुरुमहिमा, नाम स्मरण का महत्व, सत्य-शील-सदाचार पर बल, लोकधर्मिता इत्यादि निर्गुण सगुण भक्ति में मुख्य भेद उपास्य के स्वरुप भक्ति, के आधार को लेकर है। निर्गुण भक्ति में ब्रह्म को निराकार, अजन्मा, अशरीरी, इंद्रियातीत माना गया है जबकि सगुण भक्ति में ब्रह्म सविशेष, साकार इंद्रिय गम्य है। अवतारवाद में निर्गुण संतों की कोई आस्था नहीं है, जबकि सगुण भक्त ईश्वर के अवतारों में विश्वास करते हैं। भक्तिकाव्य का उदय एवं विकास भक्ति आंदोलन के दौरान होता है। सिद्ध, नाथ, दक्षिण के आलवार, महाराष्ट्र के नामदेव, वैष्णव आचार्यों, सूफियों इन सभी की प्रेरणा प्रभाव स्वरुप संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति, कृष्ण भक्तिकाव्य का विकास होता है।

भक्ति काव्य की इन चारों शाखाओं के क्रमशः प्रतिनिधि रचनाकार कबीर जायसी, तुलसीदास और सूरदास है। भक्तिकाव्य की मूल संवेदना भक्ति है, वह समाज की आध्यात्मिकक तृषा को तृप्ति प्रदान करता है, उसकी प्रवृत्तियों का परिष्कार कर उसे ईश्वरोन्मुख होने की प्रेरणा देता है। भक्ति काव्य का सबसे बड़ा महत्व उसकी मानवीयता और लोकधर्मिता के कारण है।

3.11 शब्दावली

उलटबाँसी- व्यवहारिक जीवन में बोली जाने वाली बातों के विपरीत, घुमा फिरा कर प्रतीकों का सहारा लेकर इसका प्रयोग किया जाता है।

सधुक्कड़ी भाषा- भोजपुरी, अवधी, खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के मिश्रित रूप को कहते हैं।

अष्टछाप- इसकी स्थापना वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने की। यह आठ कवि इस प्रकार हैं- कुंभन दास, सूरदास, परमानंद दास, कृष्ण दास, गोविंद स्वामी, नंददास, छीतस्वामी, चतुर्भुज दास।

प्रपत्ति भावना- इसका अर्थ है शरणागति। प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर देना।

मायावाद- शंकराचार्य के अनुसार आत्मा परमात्मा दोनों एक ही हैं परंतु माया के कारण मनुष्य दोनों की अद्वैतता का अनुभव नहीं कर पाता। माया के कारण ही मनुष्य सांसारिकता में फंसा रहता है।

3.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भक्ति आंदोलन के उदय एवं विकास पर प्रकाश डालिए।
2. भक्ति आंदोलन की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

3. “अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी हिंदी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है” इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों का उल्लेख कीजिए।
4. निर्गुण और सगुण परंपरा का तुलनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
5. भक्ति काव्य की विविध शाखाओं का मूल्यांकन कीजिए।
6. भक्ति काल की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
7. रामभक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
8. संत काव्य के प्रगतिशील आयामों को स्पष्ट कीजिए।
9. प्रेममार्गी सूफी काव्य के प्रमुख कवि जायसी का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई चार -

इकाई की रूपरेखा

4. उद्देश्य 1
4.2 प्रस्तावना
4.3 रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियाँ
4.3.1 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
4 .3. 2 सामाजिक परिस्थितियाँ
4.3. 3 राजनीतिक परिस्थितियाँ
4.3.4 कलावादी स्थितियाँ
4. 4 रीति की अवधारणा और रीतिकाव्य
4. 5 रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएँ : सामान्य परिचय
4. 6 रीतिकाल की रचनाएँ और रचनाकार
4. 7 रीतिकालीन प्रवृत्तियां
4.7.1 रीतिनिरूपण-
4.7. 2 श्रृंगारिकता
4.7. 3 प्रशस्तिगान एवं वीरता
4.7. 4 भक्तिभावना-
4 .7. 5 नीतिपरकता
4.7. 6 प्रकृतिचित्रण-
4.7. 7 अनुवाद की प्रवृत्ति
4 .7. 8 भाषागत वैशिष्ट्य
4. 8 रीतिकालीन काव्य भाषा और अभिव्यंजना शिल्प
4. 9 सारांश
4.10 कठिन शब्द
4.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4. 12 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.13 अभ्यास प्रश्न

4. उद्देश्य 1

इस इकाई के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के विकास की जानकारी प्राप्त करना।
- रीतिकाल की पृष्ठभूमि और परिस्थितियों से अवगत होना।
- रीति की अवधारणा को समझकर रीतिकाल की अंतर्धाराओं से परिचित होना।
- रीतिकाल की रचनाएँ और रचनाकारों के विषय में गहराई प्राप्त करना।
- रीतिकालीन प्रवृत्तियों के माध्यम से रीतिकाल के प्रति नवीन दृष्टिकोण।
- रीतिकालीन काव्य भाषा की समझ विकसित करना।

4. 2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल और भक्तिकाल के उपरांत स्थापित एक ऐसा कालखंड है जिसे हिंदी साहित्य में 'रीतिकाल 'के नाम से अभिहित किया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का उत्तरवर्ती मध्यकाल जिसे भक्तिकाल के पश्चात् परिगणित किया जाता है, 'रीतिकाल' नामकरण के कारण मतभेद का विषय बना रहा है। इस रीतिकाल को मिश्रबन्धुओं ने 'अलंकृत काल" से अभिहित किया तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे "रीतिकाल"कहा तो पंविश्वनाथ प्रसाद मिश्र को इसमें श्रृंगारिकता झलकी और उन्होंने इसका . रखा तो ड "श्रृंगार काल" नामॉ. रमाशंकर शुक्ल ने काव्य की कलात्मकता से आकृष्ट होकर इसे काव्यकला " "कालकी संज्ञा से विभूषित किया। इस युग में अतिरंजना और अलंकरण का बाहुल्य मिलता है लेकिन रीतिकाल में कवियों ने एक साथ संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा-, अर्थसाधन-प्राप्ति-, राजभक्ति गायन के औचित्य का निर्वाह भी गम्भीरतापूर्वक किया है। यही कारण है कि इस काल में विविध काव्यांगों पर भी ग्रन्थों का प्रणयन संभव हुआ है।

4. 3 रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल आलोचकों की दृष्टि में सर्वाधिक विवादित रहा है। यद्यपि हिंदी साहित्येतिहास में रीतिकाल का स्थान भक्तिकाल के पश्चात् माना गया (.ई 1843 से सन् 1643 लगभग सन्) है। भक्ति की अखंडित शीतल धारा से अनायास भिन्न होनेवाली प्रवृतियों में एक विशेष प्रकार की अभिरुचियां उत्पन्न होती चली गयी, जो प्रकारान्तर में रीतिकाल की संज्ञा से स्थापित हुआ। इस प्रकार हिन्दी "रीतिकाल" साहित्येतिहास में एक ऐसा कालखण्ड बना जिसके अनन्तर भक्तिकालीन उपासना वासना में परिणत हुई, अशरीरी सौन्दर्य,सूक्ष्मता- मांसलता में बदली जिसने मानवीय मूल्यों की शाश्वतता को क्षति पहुंचाकर जीवन की उदात्त परिभाषा को अमंगल का अभिशाप दिया। चूंकि किसी भी साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रस्फुटन व अभिव्यंजन में युगीन परिस्थितियों की मानसिकता एक मनोवैज्ञानिक दबाव डालती है, जिससे साहित्य, समाज का प्रतिबिम्ब बनकर उभरता है। निश्चित रूप से, रीतिकालीन साहित्य भी अपने तत्कालीन सांस्कृतिक मूल्यों, सामाजिक अन्तर्सम्बन्धों, राजनीतिक अन्तर्विरोधों और कलावादी दृष्टिकोणों के वैविध्य-वैचित्र्य में डूबता-

उतराता रहा है। रीतिकाल की साहित्यिक गतिविधियों में निम्नोक्त परिस्थितियों कों क्रमशः इस प्रकार विवेचित किया जा सकता है।

4.3. 1सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

प्रत्येक समाज और देश का अपना एक चरित्र होता है जो उसकी सांस्कृतिक गुरुता लघुता से झलक पाती है। चूंकि तत्कालीन समाज विषमता की ऊँची दीवारों से घिरा हुआ एक अधोगामी समाज था इसलिए इसके पारम्परिक-सांस्कृतिक तत्वों में हीनता बलवती होने लगी थी। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ जैसे-शासकों और सन्तों की वाणियों एवं सूफियों के उपदेशों से जिस हिन्दूमुस्लिम समन्वित समाज निर्माण की - प्रक्रिया को बल मिला था उसे औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीतियों नेधक्का पहुंचाया। शासकीय सामाजिक भय के कारण धर्म-स्थानो, धर्म- ग्रन्थों, पीठाधीशों में अतिशय शृंगारिकता का प्राबल्य देखने को मिल रहा था मस्जिदों ,मन्दिरों और देवालयों में वासना का नंगा नृत्य शुरू हो चुका था।

इधर इस्लाम अपनी रुढ़िवादी मान्यता के कारण यथार्थ जीवन से सर्वथा विमुख था। इस प्रकार नैतिकता, विलासिता, हिन्दू मुस्लिम-और वैमनस्यता अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी। जो सन्त और सूफी महात्मा थे उनकी वाणियाँ व वासना की गगनचुम्बी अट्टहासों के नीचे सिमटकर रह गयी थी। इस प्रकार आध्यात्मिक संस्कार राजनीतिक दुर्व्यवहार की शरण में जा बैठा था। शोषण, ईर्ष्या, लोभ, पाखण्ड, आडम्बर और पापाचार का बाजार गर्म हो रहा था और ऐसी स्थिति में धार्मिक संस्कारों के बीज निवीर्य हो चुके थे। इस प्रकार तत्कालीन समाज में पारम्परिक संस्कृति के तत्व मनोरंजन के साधन बनकर रह गए थे।

4.3. 2 सामाजिक परिस्थितियाँ

रीतिकालीन समाज अधोमुखी था। सामन्ती व्यवस्था से उपजी मानसिकता ने चहुंओर निराशा, हताशा और कुण्ठा को फैला रखी थी समाज खेमों में बंटा हुआ था। शासक और शोषित वर्ग, उच्च और नीच वर्ग एक ओर जीवन की अनिवार्यता में विलासिता, श्रृंगारिकता, वासनात्मकता और उदण्डता अपने उत्कर्ष पर थी तो दूसरी ओर निर्धनता, विषमता और वैमनस्यता का तांडव हो रहा था। सामन्ती व्यवस्था के कारण राजाओं, मनसबदारों और हुक्कामों का एकछत्र राज था। सेठों, साहूकारों, व्यापारियों, किसानों और मजदूर वर्गों को अपने शोषण के जाल में फंसाकर इन सामंतों की रासलीलाएं सजती थी। सामाजिक जीवन की अनुशासनहीनता में - सामान्य की तनिक भी चिन्ता -नारियों का जीवन भी चिन्ताजनक था। विलासिता में डूब रहे शासकों को जन नहीं थी, बल्कि इसके विपरीत इनकी दैनंदिनी वैश्याओं के कोठे और शराबों के मजलिसों में बीतती थी। जीवन का एकमात्र उपलब्धि काम कला की शिक्षादीक्षा तक ही सीमित थी।-

4. 3. 3 राजनीतिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक दृष्टि से रीतिकाल मुगलकालीन शासन के उत्कर्षापकर्ष युग रहा है। दो सौ से अधिक वर्षों के राजनीतिक वैकास्य एवं नैराश्य का गवाह होने के कारण इस काल ने शाहजहां 1627-56 ईके शा .ने-शौकत से लेकर 1857 के गदर की कहानी जुबानी देखी और सुनी है। जहांगीर की राज्य विस्तृति का स्वप्न पाकर शाहजहां ने अपने साम्राज्य विस्तार को और अधिक मजबूत नींव दी और इसकी सीमा को उत्तर भारत से इतर दक्षिण, उत्तरव्यवस्था को -पश्चिम तक फैलाया। आन्तरिक विरोधाभाव एवं बाह्य कारकों ने शाहजहां की शासन-) वैभव सम्पन्नता दिलाई लेकिन उसकी मृत्यु1658) ने न केवल उसके पुत्रों को सत्ता के लिए आपसी संघर्ष में प्रवृत किया, वरन् साम्राज्य को ह्रासोन्मुख भी बनाया। अकबर, जहांगीर और शाहजहां की पारम्परिक उदारता को औरंगजेब की अनुदारता ने ठेस पहुंचाई। इस धर्म-विरोधी, कट्टर, अहंवादी शासक की उदण्डता ने सामाजिक विकास में बाधा पहुंचाई एवं अशांति और अव्यवस्था की लहर चारों ओर फैलने लगी।

औरंगजेब के पश्चात् उसके पुत्रों ने भी सत्ता के लिए संघर्ष किया और उसका दूसरा पुत्र शाह आलम प्रथम स्वयं को राजा घोषित कर सका, उसकी उदारता थोड़े समय के लिए सामाजिक स्थिरता का कारण बनी लेकिन उसकी मृत्यु ने पुनः साम्राज्य को छिन्नभिन्न करना शुरू कर दिया। कम-जोर शासकों की लगातार विलासी जीवन की अनिवार्यता एवं टूटती हुई अर्थव्यवस्था ने छोटेछोटे जागीरदारों को स्वतंत्र अस्तित्व की -) अहमियत सुझाई और नादिरशाह1738) अहमदशाह अब्दाली) 1761 ई(. के आक्रमणों ने मुगल शासन को मौत के कगार पर पहुंचा दिया। दूसरी ओर विदेशी व्यापारियों खासकर अंग्रेजों ने इस अव्यवस्थित शासकीय व्यवस्था से लाभ उठाया और समस्त उत्तरी भारत पर अपना कब्जा जमाया। यद्यपि सन् 1857 की क्रांति एक बार पुनः इनको पुनर्जीवन मिला, लेकिन अंग्रेजी ताकत ने इनके दुस्वप्न को ध्वस्त कर दिया और इस प्रकार दीर्घ समय तक अवस्थित मुगल साम्राज्य समाप्त हो गया। ,केन्द्रीय सत्ता की समाप्ति का बिगुल बजते ही अवध ! राजस्थान, बुन्देलखण्ड जैसे प्रान्तों की समाप्ति भी आपसी युद्धों, विलासी कुचक्रो, पतनोन्मुख विद्वेषों का शह पाकर ही हुआ।

4.3. 4कलावादी स्थितियाँ

यद्यपि तत्कालीन समाज राजनीतिक दाँवपेचों और सामाजिक उहापोहों के उतारचढ़ाव का एक -,दस्तावेज बनकर रह गया था लेकिन यह हर्ष की बात है कि राजाओ के विलासी जीवन की अभिव्यक्ति में साहित्य और विभिन्न कलाओं की सार्थकता को स्वीकृति मिली। दरअसल आश्रयदाताओं राजाओं व देशीनवाबों -को अपने ऐश्वर्य पराक्रम, विलास वैभव और शाने प्रशंसा चाहिए थी-शौकत की आत्म-और राज्याश्रित कवियों एवं कलाकरों को जीविकोपार्जन की निश्चितता। यही कारण है कि दोनों एक-दूसरे के लिए आत्मोत्सर्ग की सीमा पर जाकर भी मनसाक-वाचा-र्मणा एक थे। सम्मान और उचित अर्थप्राप्ति का मोह इन कवियों-, कलाकारों को राजाओं के प्रशस्तिगान के लिए प्रेरित और प्रस्तुत करना था तथापि सर्जन स्वतंत्रता की अनुपलब्ध मानसिकता

इन्हें चरमोत्कर्ष पर जाने से रोकती रही। इसके बावजूद, इस युग में साहित्य और अन्यान्य कलाओं का विधिवत् विस्तार होता रहा, जो इसकी विशिष्टता का कारण बनी। अतिरंजना प्रशंसा की वाहिका है और अलंकरण की प्रवृति अतिरजना का माध्यम। यही कारण है कि इस युग में अलंकरण की प्रवृत्ति राजकीय भाषा फारसी तक ही सीमित न रही बल्कि जनभाषा तक इसका प्रसार हुआ। जनज-ीवन से सम्पृक्त व्रजभाषा भी अलंकरण की इस प्रवृत्ति से भरी पड़ी है। जीवन की विलासिता में आंकठ डूबे हुए आश्रयदाताओं की वासनात्मकता हो या श्रृंगार-प्रसाधन से अतिलिप्त राजकीय कन्याएं श्रृंगारिक रचनाओं में इनका अतिरंजित वर्णन आद्योपान्त दिखाई पड़ता है। इस प्रकार अपनी रचना-धार्मिता का सामर्थ्य शक्ति प्रदर्शन एवं शिक्षित समुदाय को-संस्कृत भाषा की परम्परा में ग्रहीत कर काव्यदान देकर इन कवियों ने अपनी सेवा-शास्त्रीय ज्ञान-धर्मिता की सफलता पाई। इसके साथ ही जनसाधना और जन-कवियों ने स्वतंत्र रूप से रचना कर अपनी साहित्य- सेवा की भावना को परिष्कृत किया। इसमें सन्देह नहीं इस प्रकार ,आलोच्य काल में साहित्यगुण और मात्रा की दृष्टि से पुष्ट और श्रेष्ठ साबित - हुआ।

साहित्य से इतर इस काल में चित्रकला, संगीत कला, स्थापत्य कला और अन्यान्य ललित कलाओं के व्यापक प्रचार प्रसार से-रीतिकाल की विशिष्टता और भी अधिक उजागर होती है। चित्रकला इस काल की विशिष्ट अभिव्यक्ति है। काव्यकला के समानान्तर विकसित होने वाली चित्रकला जहाँगीर के शासनकाल से ही - समृद्ध रही है। अपने गुण और परिमाण में व्यापक होकर ही इस कला ने औरंगजेब जैसे कट्टर और संकीर्ण मानसिकता वाले शासक को भी अपनी ओर आकृष्ट किया। यद्यपि राजकीय व्यवस्था की झूठी मर्यादा और शासकों की सामन्ती अभिरुचियों ने चित्रकला जैसी समृद्ध विधा में भी एक प्रकार की नीरसता ला दी। रंगों प्रकारों, चित्रों, राजकीय क्रियाकलापों की जड़ता ने इसकी नूतनता और सजी-वता का गला अवश्य ही दबाया है। इसके विपरीत हिन्दू रजवाड़ों में चित्रकला लोकजीवन की सम्-पृक्ति के साथ फलतीफूलती रही जिसे - कमशः राजस्थानी और कांगड़ा शैलियों के रूप में ग्रहण किया गया। राजस्थानी शैली जहाँ कृष्ण-लीला, बारहमासा, नायिका भेदाश्रित रही, वहां कांगड़ा शैली का आधार महाभारत, भागवत पुराण और लोकगाथाओं से सम्पृक्त रहा। चित्रकला की भाँति ही इस युग में स्थापत्य और संगीत कला का वैशिष्ट्य भी हमारा ध्यानाकर्षित करता है। यद्यपि यह स्थापित सत्य है कि स्थापत्य और संगीत कला जैसी अभिरुचियों का निर्वाह राजाओंरजवाड़ो-ं तक ही सीमित था। जनजीवन से सर्वथा दूर इन कलाओं का परिष्कार राजकीय घरानों - द्वारा ही सम्पन्न होता रहा। अकबर ने अपने शासन काल में स्थापत्य और संगीत दोनों हीकलाओं का समन्वित रूप प्रदर्शित किया, जबकि शाहजहां की दृष्टि स्थापत्य कला की ओर अधिक उन्मुख रही। शाहजहां द्वारा निर्मित आगरा का ताजमहल और दिल्ली का दीवानेखास स्थापत्य कला के बेजोड़ नमूने है। शाहजहां की मृत्योपरान्त - इन दोनों ही कलाओं के प्रति शासकों की दृष्टि प्रायः नहीं रही। औरंगजेब ने तो मन्दिरों को तुड़वाकर एक नये कीर्तिमान की स्थापना कर डाली और संगीतके प्रति उसकी आत्मा तो कभी जीवित ही न थी। इसके विपरीत हिन्दू राजाओं ने भी अपने जातीय गौरव की रक्षा में स्थापत्य कला को प्रश्रय दिया। जयपुर में राजा सवाई जयसिंह का राजमहल, दीग सूरजमल का महल, संग्रामपुर, छत्रसाल आदि की छतरियों को इस कला का ज्वलन्त उदाहरण माना जा सकता है। उसी प्रकार संगीत कला के विकास में राजस्थान और ग्वालियर का योगदान भी स्मरणीय है।

बोध प्रश्न

1. रीतिकाल की पृष्ठभूमि नातिदीर्घ निबंध लिखिए डालिए।
2. सिद्ध कीजिए कि रीतिकाल में साहित्य संगीत और कला का एक साथ विकास हुआ ,।
3. हिंदी साहित्येतिहास में रीतिकाल का कालखंड कब से कब तक माना जाता है ?

(क)सन् .ई 1343 से सन् 1043
(ख)सन् .ई 1643 से सन् 1343
(ग)सन् .ई 1843 से सन् 1643
(घ) सन् .ई 1943 से सन् 1843

4. 4रीति की अवधारणा और रीतिकाव्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल और भक्तिकाल के उपरांत स्थापित एक ऐसा कालखंड है जिसे हिंदी साहित्य में 'रीतिकाल 'के नाम से अभिहित किया गया है। 'रीति' शब्द का जो अभिप्राय हमें संस्कृत साहित्य में मिलता है जिसके आधार रीति संप्रदाय भी है उस शब्द का समान अभिप्राय हिन्दी साहित्य के लिए उपयुक्त नहीं है। वास्तव में रीत -शब्द का अर्थ है "रीति" , प्रणाली परम्परा, पद्धति आदि। संस्कृत काव्य शास्त्र में विशिष्ट पदरचना को ही रीति कहा गया है। वामन के मतानुसर शब्द एवं अर्थगत सौन्दर्य से युक्त पद रचना का --नाम रीति है। शनैःशनैः रीति शब्द काव्यरचना की विशिष्ट पद्धति के रूप में ही गृहीत होता रहा। तद्नुरूप - हिन्दी में भी इसका प्रयोग एक पद्धति विशेष के रूप में ही प्रयुक्त हुआ।

संस्कृत साहित्य में अलंकार, रीति, रस, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्यशास्त्रीय चिंतन के पहलू हैं। अलंकारवाद, रीतिवाद, रसवाद इत्यादि काव्यशास्त्रीय चिंतन की सुदृढ़ प्रणाली हैं। हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में जितने भी रीतिग्रंथ मिलते है, उनमें कवियों का संस्कृत साहित्य से कमोवेश भिन्न उद्देश्य है। इन रीति ग्रंथों के कवियों का उद्देश्य काव्यांगों का शास्त्रीय विवेचन करना नहीं था। उनका मुख्य उद्देश्य कविता करना था। कविता के प्रति उनका दृष्टिकोण भी बहुत सीमित था। कवि अर्थोपार्जन के लिए कविता करते थे। सामंतों का दरबार उनकी कविता का मुक्त बाजार था। सामंतों की रुचि का ध्यान रखना और उनका मनोरंजन करना कवियों के लिए महत्वपूर्ण हो गया था। इस कार्य के लिए कवियों ने तीन प्रकार से शास्त्र का सहारा लिया। प्रेम-क्रीड़ाओं से संबंधित काम शास्त्र, उक्ति वैचित्र्य से संबंधित अलंकार शास्त्र और नायक-नायिका के स्वभाव का वर्णन करने वाले रस शास्त्र को कवियों ने अपना आधार बनाया।

यद्यपि काव्यशास्त्र विवेचन हिन्दी में भी काफी पुराना है। सत्रहवीं शती के प्रारंभ में कृपाराम की- 'हितरंगिणी' की रचना को विद्वानों ने अमान्य तो ठहरा दिया, लेकिन उसी में उसकी एक निश्चित परंपरा का संकेत है जो कभी समाप्त नहीं हुई। ऐसा हो सकता है कि आदिकाल में सामंत युद्धों में व्यस्त थे और संत सामान्य जन में आध्यात्मिक चेतना जगाने और अपने मत के प्रचार में डूबे हुए थे। अतउस समय कविता वीरों में : युद्धोन्माद और लोक में अलौकिक शक्तियों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने का साधन बनी।इस तथ्य की ओर

संकेत करते हुए 'हिन्दी साहित्य का इतिहास में 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा कि-भक्तिकाल में कविता आराध्य देवों के गुणगान का सशक्त माध्यम बनी। दूसरी ओर बाह्याडंबर के विरोध में और प्रेम के वास्तविक रूप के उद्घाटन में ही संतों आध्यात्मिक प्रवाह - सूफियों ने उसकी सार्थकता मानी। इस धार्मिक - में तथा आगे चलकर रीतिकाल में हिन्दी कविता का स्वरूप बदलता रहा। रीतिकाल तक आतेआते कविता का विषय शृंगार - हो गया। इस युग में भक्ति गौण और शृंगारिकता प्रमुख हो गई।

शनैः-शनैः 'रीति' शब्द काव्यरचना की विशिष्ट पद्धति के रूप में ही गृहीत होता रहा। तद्नुरू-प हिन्दी में भी इसका प्रयोग एक पद्धति विशेष के रूप में ही प्रयुक्त हुआ। इस प्रकार रीतिनिरूप-ण, के यह पारम्परिक अभिव्यक्ति एक व्यापक पृष्ठभूमि पर फलतीफूलती रही। नन्ददास-, तुलसीदास, केशवदास, रहीम, सुन्दरदास आदि कवियों ने इस परंपरा को जीवंतता दी, जिसे रीतिकालोन कवियों ने भी अंगीकार किया। रीतिकालीन काव्यग्रंथों में प्रायः सभी कवियों ने रीति शब्द को पद्धति विशेष के रूप में ग्रहण करते हुए इसकी व्याख्या इस प्रकार की है- काव्य की रीति सिखी सूकवीन सो ,(भिखारीदास)रीति सु भाषा कवित की बरनत बुध अनुसार चिन्तामण)ि ,(अपनी अपनी रीति के काव्य और कवि-रीति,(देव) छन्द रीति समुझे नहीं, बिन पिंगल के ज्ञान ,(सोमनाथ)थोरे क्रम क्रम ते कही अलंकार की रीति (दूलह।(इन प्रमुख उदाहरणों से यह ध्वनित होता है कि रीति शब्द काव्यविधान और काव्यांगविवेचन के अर्थ में ही गृहीत होता रहा - है।

इस प्रकार रीतिकाल में श्रृंगारिकता, अलंकारिता, अन्यान्य साहित्यिक रचनाधर्मिता-वीरकाव्य-, भक्ति-काव्य, नीतिकाव्य-, प्रेम कथा काव्य आदि काव्य की रुढ़ धारा के साथपरम्परा-कथा काव्य-साथ प्रेम-, स्वच्छन्द-मुक्तक काव्य परम्परा-प्रेम, ऐतिहासिक काव्यपर-म्परा, भक्ति एवं नीति काव्यपरम्परा एवं पौराणिक प्रबन्ध - परम्परा की अनेकानेक धाराओं का जिस अविरल प्रवाह से संचालन हो रहा था-काव्य, उसकी विस्तृति को भी परम्पराओं के प्रणयन की शुरूआत प्रायः -अपनी परिधि में समेट पाया है। इन नानाविध काव्य "रीतिकाल" आदिकाल औरभक्तिकाल में ही हो चुकी थी जिसे एक बंधी बंधायी परिपाटी में रीतिकालीन कवियों ने गंभीरता से सजाया और संवारा।

बोध प्रश्न

? रीतिकाल और रीतिकाव्य से आप क्या समझते हैं 4

शब्द का अर्थ "रीति" 5 नहीं है -

रिक्त (क)

(ख) प्रणाली

(ग) परम्परा

(घ) पद्धति

6 अपनी अपनी रीति के काव्य और कवि-रीति– किसकी उक्ति है -

भिखारीदास (क)

(ख) देव

चिंतामणि (ग)
दूलह (घ)

4. 5 रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएँ सामान्य परिचय :

हिन्दी साहित्य के इतिहास का उत्तरवर्ती मध्यकाल जिसे भक्तिकाल के पश्चात् परिगणित किया जाता है 'रीतिकाल' नामकरण के कारण मतभेद का विषय बना रहा है। भक्तिकाल की अबाध शीतल धारा के प्रवाह से अलग हटकर जिन साहित्यिक प्रवृत्तियों के साथ रचनाऐं की जाती रहीं उनमें राजाओंरजवाड़ों की क्लिासिता-, कामिनियों की श्रृंगारिकता, मांसल प्रेम की प्रगाढ़ता एवं संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्पराओं के निर्वाह का - औचित्य अभिव्यक्ति की बहुलता के साथ प्रसूत होती रही। चूंकि सामाजिक व्यवस्था में इन तत्वों की तात्कालिक सर्जन में-मांग आवश्यकता से अधिक थी और काव्यप्राकृत-कवियों का प्रयोजन विविध था इसलिए सहित्येतिहासकारों ने इसके नामकरण के सन्दर्भ में मतैक्य नहीं पाया। इस सन्दर्भ में आलोच्य काल को मिश्रबन्धुओं ने 'अलंकृत काल" से अभिहित किया तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे "रीतिकाल"कहा तो पं . विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को इसमें श्रृंगारिकता झलकी और उन्ह्ोंने इसका नाम रखा तो "श्रृंगार काल"डॉ. रमाशंकर शुक्ल ने काव्य की कलात्मकता से आकृष्ट होकर इसे "काव्यकला काल"की संज्ञा से विभूषित किया। यद्यपि किसी काल विशेष की साहित्यिक प्रवृतियों में प्रवाहित वैचारिक हलचलों, बौद्धिक आत्स्वीकृतियों, राजनीतिक ऊहापोहों और अन्ततः सांस्कृतिक परिपाटियों का अपना विशिष्ट महत्व होता है इसलिए नामकरण के औचित्य में स्पष्ट और गौण प्रवृतियों की प्रचुरता न्यूनता, सामाजिक आस्था-अनास्था एवं कवियों, साहित्यकारों की आशाओंअनास्था-ओं एवं कवियों, साहित्यकारों की आशाओंअभिरुचियों को- भी महत्व का माना जाना चाहिए।

मिश्रबन्धुओं द्वारा ग्रहीत नाम "अलंकृत काल" कहने का आधार आलोच्य कालीन रचनापद्धति को - इंगित करता है। अलंकरण की प्रवृत्ति किसी भी भाषा एवं उसके साहित्य के वैकास्य के लिए एक अनिवार्य नहीं तो आवश्यक प्रविधि है। भाषा के रूप एवं भाव के संस्कार परिष्कार के लिए कवियों ने आदिकाल से ही अलंकरण की प्रवृत्ति अपनाई है। यद्यपि इस युग की कविताओं में अलंकरण की प्रवृत्ति अत्यधिक प्रबल थी, लेकिन यह कवियों की रचना धार्मिता का मूल उद्देश्य नहीं था।-क्योंकि राज्याश्रित होकर इन कवियों ने जीविकोपार्जन भी किया है और कवि कर्म भी निभाया है जिसके परिणामस्वरूप इनमें अतिरंजना और अलंकरण का बाहुल्य मिलता है लेकिन आलोच्य काल में कवियों ने एक साथ संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा-, अर्थसाधन-प्राप्ति-, राजभक्ति गायन के औचित्य का निर्वाह भी गम्भीरतापूर्वक किया है। यही कारण है कि उक्त काल में विविध काव्यांगों पर भी ग्रन्थों का प्रणयन संभव हुआ है और जहाँ उद्देश्य की गम्भीरता से काव्यसर्जन - का आधिक्य हुआ हो वहां अलंकरण की संस्कारधर्मिता को प्राथमिकता देकर नामकरण करना सार्थक नहीं लगता।

पंविश्वनाथ प्रसाद मिश्र ज .ी द्वारा पद्धति को ही माना गया है। -का आधार भी रचना "श्रृंगारकाल" वास्तव में श्रृंगार आलोच्यकालीन कविताओं की अन्यान्य प्रवृत्तियों में से एक प्रमुख प्रवृत्ति बनकर उभरी लेकिन

की तरह इसमें भी दूरदर्शिता का अभाव एवं सम्पूर्ण रीतिकालीन साहित्य की अ "अलंकृत काल"सम्पृक्ति का बोध होता है। यह सच है कि उस युग में सामन्ती व्यवस्था, दरबारी सभ्यता, विलासी जीवन की आस्था से उत्पन्न मानिसकता में सौन्दर्य के मांसल रूप का काफी वर्णन किया गया है। कामिनियों के रूप लावण्य, राजाओं की वासनात्मकता, सुरासुन्दरियों के प्रति रूपासक्ति ने अतिन्द्रिय प्रेम का गला दबाकर चेतन श्रृंगार को बाजारु वस्तु बनाकर छोड़ दिया है, फलतः साहित्य में विशुद्ध श्रृंगार के स्थान पर मांसल श्रृंगार की आरती उतारी गई है। यह विदित है कि श्रृंगारिकता का प्राबल्य अलंकरण की प्रवृत्ति को भी पुष्ट करता है और आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति को भी वास्तव में श्रृंगार वर्णन के अनन्तर भी कवियों का उद्देश्य दमित काम-वासना के उन्नयन का न होकर अर्थोपार्जन का ही रहा है। दूसरे कवियों की विपन्नता उन्हें राजभक्त अधिक बना सकी, कवि कम लेकिन आश्रयदाताओं का यथार्थ भी तो जन जीवन की-विमुखता से कीड़ागृह की उन्मुक्तता तक -सीमित था। ऐसी अवस्था में श्रृंगारिकता की प्रचुरता के लिए कवियों को दोषी ठहराना उचित नहीं जान पड़ता। -काव्य) एवं भिखारीदास (सतसई) वर्णनों से सर्वथा असंतुष्ट मतिराम-शृंगारिकनिर्णयइसी तथ्य पर प्रकाश (डालते है। उसी प्रकार गोप, रसरूप एवं सेवादास जैसे कवियों ने श्रृंगारविरोध के द्वारा यह साबित करना चाहा -है कि श्रृंगार आलोच्य काल की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसके विपरीत उनकी दृष्टि में काव्यांग चर्चा, काव्य रचना पद्धति का विस्तार एवं काव्यशास्त्रीय ज्ञान का आलोक जनमानस-तक पहुंचाना था। इस सन्दर्भ में जसवन्त सिंह -की पंक्तियां द्रष्टव्य है (भाषाभूषण)"भाषाभूषण ग्रन्थ को जो देखै चित लाव। विविध अर्थ साहित्य रस ताहि सकल दरसाव।इसी प्रकार श्रृंगारिकता को नामकरण का औचित्य बतलाकर रीतिकालीन भक्ति " काव्य, वीरकाव्य, नीतिकाव्य एवं अन्यान्य श्रृंगारेतर साहित्यिक तत्वों का अलगाव हमें सम्पूर्ण साहित्य के अध्ययनग्रन्थों की महत्ता -अन्वेषण से विमुख करता है। काव्यांग विवेचन की दृष्टि से रचित अनेकानेक लक्षण-नाम आलोत्य काल की व्यापक पृष्ठभूमि को समेट पाने "श्रृंगारकाल" स्वतः सिद्ध करती है किमें सक्षम नहीं है।

डॉ. रमाशंकर शुक्ल ने उक्त काल के लिए नाम सुझाया है। यद्यपि आलोच्य काल में "काल-काव्यकला" राजाओं ने अपने प्रासाद से राजदरबार तक कलाओं की नानारूपेण अभिव्यक्ति चाही है। उनके विलासपूर्ण अभिसार की यात्रा में कामिनियों की कामचेष्टा और कवियों की साहित्यसाधना भी एक प्रकार की कला ही है। -दूसरे, आलोच्य काल में कला, कला के लिए ही उपयुक्त समझी जाती रही है। इस प्रकार काव्यकला के अंगों के रहस्योद्घाटन एवं उद्भावन में प्रवृत्त कवियों ने अनेक काव्य लक्षण में ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिसका आधार लेकर डॉ. शुक्ल इसे की स्वीकृति "काव्यकला काल"दी है।

आचार्य शुक्ल ने नामकरण अपने "रीतिकाल" शब्द को पारम्परिक अर्थ में ही स्वीकार किया है। "रीति" विस्तार में श्रृंगारिकता-अर्थ, अलंकारिता, विलासिता एवं अन्यान्य साहित्यिक रचनाधर्मिता यथा- वीरकाव्य-, भक्तिकाव्य-, नीतिकाव्य-, प्रेम कथा काव्य का निर्वाह भी करता है एवं साथ ही संस्कृत काव्यशास्त्रीय -पारम्परिक ज्ञान के वाहक के रूप में भी इसकी सार्थकता स्थापित करती है। दूसरे अर्थ में यह भी कहा जा सकता है कि तत्कालीन साहित्य में श्रृंगार की अधिकता भी एक प्रकार की रीति ही रही है। यद्यपि की "रीतिकाल" व्यापकता को स्वीकार कर लेने के पश्चात् भी कुछ ऐसे कवि इसकी परिधि से छूट जाते है जिनकी रचनाओं को

बताया है। घनानन्द "रीतिमुक्त" विद्वानों ने, आलम, बोधा, ठाकुर, सूदन, द्विजदेव आदि कवियों ने अपनी रचनाओं में न तो काव्यशास्त्रीय नियमों के प्रति आस्था दिखलाई और न ही इनमें काव्यांगविवेचन के प्रति कोई - अनुराग प्रदर्शित हुआ। यद्यपि इनमें से प्रत्येक कवि राज्याश्रित थे। स्वाभाविक है कि राजाभिरुचियों के पालन में साधना को प्रेरणा व प्रदक्षिणा मिलती रही होगी।-इनकी कवित्वयद्यपि प्रेम की अभिव्यक्ति में इनकी स्वच्छन्दता अवश्य ही कायम रही। परन्तु, रीतिकालीन काव्य के विभाजन रीतिबद्धता), रीतिसिद्धता एवं रीति मुक्तता से कोई कवि अलग ठहर ही नहीं सकते। (रीतिकालीन कवियों के काव्य की सर्वाधिक अभिव्यक्त प्रवृत्ति रीतिनि-रूपण 'रही है क्योंकि इसके अनन्तर कवियों ने अपनी रचनाधर्मिता को विविधता का सोपान दिया है। यही कारण है कि हिंदी के आलोचकों ने रीतिनिरूपण के व्यापक विश्लेषण के फलस्वरूप इन्हें तीन वर्गों में - विभक्त माना है।

बोध प्रश्न

रीतिकाल की ती 7न धाराओं का सामान्य परिचय दीजिए।

8आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उत्तर मध्य काल को क्या नाम दिया है -

अलंकृत काल (क)

(ख) शैशव काल

रीतिकाल (ग)

कलाकाल (घ)

9'भाषाभूषण ग्रन्थ को जो देखै चित लाव' किसकी उक्ति है-

भिखारीदास (क)

(ख) देव

चिंतामणि (ग)

जसवंत सिंह (घ)

4 .रीतिकाल की रचनाएँ और रचनाकार 6

रीतिकाल की परम्परा का सूत्रपात्र आचार्य कृपाराम की हिततरंगिणी)1541ई(. से शुरू हुआ माना जाता है जिसमें नायिका भेद-का विवेचन है। ऐसे ही आचार्य केशवदास को रीतिकाल के प्रवर्तक के रूप में माना जाता है जिन्होंने रसिक-प्रिया)1591ई (.कविप्रिया)1601ई(. की रचना करके रीतिकाल की प्रतिष्ठापित किया।' कविप्रिया 'काव्यदोष-, कवियों के गुणदोष-, अलंकार, बारहमासा इत्यादि विषयों पर कविशिक्षा से - संबंधित रचना है' जबकि ,रसिक प्रिया' रस एवं नायक नायिका-के भेद का निरूपण है। छंदनाममाला में विविध छंदों का विवेचन प्राप्त होता है।

केशवदास की प्रसिद्धि का काव्य रामचंद्रिका)1601ई(. है जो रामचरित विषयक प्रबंधात्मक काव्य है। इसके अतिरिक्त वीरदेवसिंह चरित)1607) रतनबावनी)1607ईजहाँगीरजस (चन्द्रिका (1612) विज्ञान गीता)1610 ई(आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी से रीतिकाल की अखंडित परम्परा को माना है , 'रस विलास' जिनकी रीतिकालीन कृतियों में(1630-80ई(रसविवेचन के लिए प्रसिद्ध है इस ,रचना में भानुदत्त की 'रसमंजरी' और 'रसतरंगिणी का पद्यानुवाद प्रतीत होता है। श्रृंगारमंजरी)1630-80ई(में नायक-नायिका भेद का आधार आंध्र प्रदेश के संत अकबरशाह की संस्कृत रचना 'शृंगार मंजरी' का ब्रजभाषा में अनूदित कार्य है। इनकी अन्य रचनाओं में कविकुल कल्पतरु)1630-80), रामायण)1630-80ई,(. रामाश्वमेध) 1630-80ई ,(.छंदविचार पिंगल (1630-80 ई(. है । रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में मतिराम का स्थान भी माना जाता है जिन्होंने ललित ललाम)1681-64) में अलंकार विवेचन (अर्थालंकार पर विशेष), रसराज)1633-43 के बीच(में शृंगार रस निरूपण ,मतिराम सतसई)1681 ई(में शृंगार रस विषयक दोहा ,अलंकार पंचाशिका)1600 ई (में अलंकार विवेचन और छंदसार संग्रह)1701ई,(वृत्तकौमुदी में छंदविवेचन- किया है।

आचार्य देव रीतिकाल के ऐसे महाकवि हैंजिनकी ख्याति केशव और चिंतामणि से अधिक मानी गई है ,। इन्होंने नवरस और अलंकार विवेचन सम्बन्धी भाव विलास)1689 ई(. की रचना 16 वर्ष की अवस्था में कर दी थी। शब्द रसायन)1689-1767 ई (.और काव्य रसायन ग्रंथों में काव्य रूप, शब्द शक्ति, रस, नायक-नायिका भेद, रीति, गुण आदि का विवेचन प्राप्त होता है। नायकनायिका भेद-, श्रृंगार रस इत्यादि से संबंधित कवित्तों का संग्रह' सुख सागर तरंगमे 'ं प्राप्त होता है। अष्टयाम)1689 1767 ई(. में नायकनायिकाओं के - आठों पहर के भोगविलास का चित्रण है तो , विभिन्न प्रदेशों व नगरों के निवासियों की वेशभूषा एवं रहनसहन - ' का वर्णनजाति विलासमें किया गया है '। आचार्य भिखारीदास को दास कवि के नाम से भी जाना जाता है। इनका सबसे प्रसिद्ध और आचार्यत्व पद की प्राप्ति के लिए विख्यात ग्रंथ काव्यनिर्णय)1746 ई(. है जिसमें ,काव्य प्रयोजन, काव्यहेतु शब्दशक्ति, गुण दोष आदि का-विशद वर्णन मिलता है। रससारांश)1742 ई(. में नवरसों का विस्तृत विवेचन और शृंगारनिर्णय)1750ई (.में शृंगार रस के दोनों पक्षों का विशद् निरूपण है तो , छंदोर्णवपिंगल)1742ई(. में छंद का निरूपण प्राप्त होता है। संस्कृत अमरकोश के आधार पर इन्होंने 'नामप्रकाशकोश) '1738) लिखा है। आचार्य कुलपति मिश्र की प्रसिद्द कृति-रस रहस्य)1670 ई (.है। यह सर्वांग निरूपण ग्रंथ आचार्य मम्मट के 'काव्यप्रकाश और आचार्य विश्वनाथ कृत-साहित्यदर्पण एवं हिंदी के आचार्य केशवदास कृत रसिकप्रिया को आधार बनाकर लिखा गया है। इनकी अन्य रचनाएँ-संग्राम सार)1667 ई(. और दुर्गा भक्ति चंद्रिका भी है। कवि सोमनाथ की रचना 'रस पीयूष निधि) '1737 ई(. में सर्वांग निरूपण और

शृंगार विलास (1725-60 ई(. में शृंगार रस, नायकनायिका भेद का वर्णन- है। इनकी सुजान विलास)1730ई(. कृष्णलीलावती पंचाध्यायी)1750 ई,(. माधव विनोद नाटक)1752 ई (.अन्य रचनाएँ भी हैं।

रीतिकालीन कवियों में तोषनिधि की 'सुधानिधि) '1734 ई (.सर्वरस निरूपण संबंधित प्रसिद्ध ग्रंथ है। जसवंत सिंह का भाषा-भूषण)1650-85 ई(. ग्रन्थ में अलंकार, रस, नायिका भेद का विवेचन है। इस अलंकार प्रधान ग्रंथ पर जयदेव कृत-चंद्रालोक का छायाभास मिलता है। महाकवि भूषण की तीन प्रसिद्ध रचनाएँ हैं- शिवराज भूषण)1673 ई,(. शिवाबावनी और छत्रसाल दशक। पहली रचना में शिवाजी की प्रशस्ति एवं अलंकार निरूपण संबंधी रीति ग्रंथ में कुल 105 अलंकारों का विवेचन हुआ है। जबकि दूसरे में शिवाजी की प्रशस्ति से संबंधित कुल बावन मुक्तक छंद होने से बावनी नाम पड़ा। इसी प्रकार तीसरी रचना छत्रसाल की प्रशस्ति संबंधी वीररस के कारण दस छंद होने से दशक नाम पड़ा । रीतिकालीन कवि सुखदेव मिश्र के रस-रत्नाकर)1633 ई से .1703 ई(. में रस ,विवेचन-रसार्णव)1633-1703 ई (में नवरस, वृत्त-विचार)1671ई(. में विभिन्न छंदों का विवेचन प्राप्त होता है। मुरलीधर भूषण ने अपने ग्रन्थ छंदोहृदय प्रकाश)1666ई (में विभिन्न छंदों का विवेचन किया है। रसवादी आचार्य कवि कुमारमणि भट्ट ने रसिकरंजन)1708ई(. और रसिकरसाल में संस्कृत कवियों की सूक्ति और काव्यांग का विवेचन प्रस्तुत किया है। दूलह कवि ने कविकुल कंठाभरण)1743-1768 के मध्य(में 115 अलंकारों एवं 85 छंदों का निरूपण किया है।

रसलीन ने अंग दर्पण)1737 ई में (.नखशिख का उपमा ,उत्प्रेक्षा से चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है जबकि , रसप्रबोध)1741 ई(में शृंगार रस की प्रधानता से युक्त रस निरूपण ग्रंथ में सभी रसों का वर्णन किया है। काव्य का सर्वागनिरूपण ग्रं-थों की रचना करने वाले जगत सिंह एवं जनराज ने साहित्य सुधानिधि एवं कविता रस विनोद लिखा है। गोप कवि ने रामचंद्रभूषण, रामचंद्राभरण और रामालंकार में अलंकारों का विशद विवेचन किया है जबकि ,प्रताप साहि ने व्यंग्यार्थ कौमुदी (1825 ई(. में व्यंजना तथा काव्य विलास)1829 ई(में काव्य लक्षणों का निरूपण किया है। ग्वाल कवि ने साहित्यानंद)1824ई,(. कवि दर्पण, रसिकानंद, बलवीर विनोद)1847ई,(. प्रस्तार प्रकाश, गोपी पच्चीसी, यमुना लहरी)1822ई,(विजय विनोद, हम्मीर हठ)1824 ई,(. भक्त भावन)1862 ई(. आदि ग्रंथों में साहित्यिक मनोरंजन के पदों के साथ काव्यांग के अनेक पक्षों का सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार कवि अमीरदास ने भी अनेक ग्रंथो का प्रणयन किया जिनमें ,ब्रजविलास सतसई) 1832 ई ,(.सभामंडन)1827ई,(. वृत्त चंद्रोदय)1830ई,(. श्रीकृष्ण साहित्य सिंधु)1833 ई ,(.वैद्य कल्पतरू)1850ई ,(अश्व संहिता प्रकाश (1862 ई.), शेर सिंह प्रकाश)1840 ई(. प्रमुख कृतियाँ हैं।

रीतिकाल में अपनी भूमिका निभाने वाले कवियों में याकूब खाँ) रसभूषण(, सूदन) सुजान चरित(, जोधराज)हम्मीर रासो -1818 ई) हरिनाथ ,(.अलंकार दर्पण(, चंद्रशेखर बाजपेई)हम्मीर हठ, रसिक विनोद-1846ई(नखशिख. माखन कवि) छंद विलास या श्रीनागपिंगल-1702ई (.उजियारे कवि)जुगलरस प्रकाश और

रस चंद्रिकाका उल्लेखनीय नाम है (। महाराज राम सिंह कृत रस शिरोमणि)1773ई ,(जुगलविलास)1779ई,(अलंकार दर्पण) 1778 ई ,(रसनिवास)1782 ई,(. रसविनोद)1803 ई (.रीतिकालीन साहित्य है । कृष्णभट्ट देव ऋषि की शृंगार रस माधुरी)1712 ई ,(अलंकार कलानिधि ;रसिक सुमति का अलंकार चंद्रोदय)1729ई ,(रघुनाथ बंदीजन का रसिक मोहन)1739ई,(जगत् मोहन)1750ई ,(काव्य कलाधर)1745ई ;(रसरूप का तुलसी-भूषण)1754ई कवि (.सेवादास का रसदर्पण, रघुनाथ अलंकार)1738ई ;(.गिरधर दास का भारती भूषण ;मुरलीधर भूषण का अलंकार प्रकाश)1648ई-छंदो (.हृदय प्रकाश)1666ई;(सुखदेव मिश्र का वृत्त विचार)1761 ई;(. रामसहाय का वाणी भूषण)1816ई(, वृत्त तरंगिणी)1816ई दशरथ का ;(.वृत्तविचार)1799 ई ;(.कालिदास त्रिवेदी का वर-वधू विनोद)1692ई ,(जंजीराबद ,राधा माधव बुध मिलन-विनोद, कालिदास हजारा आदि प्रमुख रचनाएँ हैं । कवि राम का शृंगार सौरभ)1667 ई ;हनुमान नाटक (.नेवाज का शकुन्तला नाटक)1680ई ;(.श्रीधर (मुरलीधर) का जंगनामा ;सूरति मिश्र का अलंकारमाला)1709 ई (और अमरचन्द्रिका टीका)1737ई ;(.कवीन्द्र उदयनाथ की रचना रसचंद्रोदय, जोगलीला)1747 ई,(. विनोद चंद्रिका)1720ई ;(श्रीपति का काव्यसरोज)1720 ई कविवर ;(.बीर की कृष्णचंद्रिका)1722 ई कवि ;(.गंजन का कमरुद्दीन खाँ उल्लास)1728 ई ;(.भूपति र)ाजा गुरुदत्त सिंह(का कंठाभूषण और रसरत्नाकर विशेष कृतियाँ हैं। दलपति राय और वंशीधर की अलंकार रत्नाकर)1735ई(. रचनायें हैं ।

शंभुनाथ मिश्र की रीति सम्बन्धी तीन कृतियाँ- रसकल्लोल, रसतरंगिणी ,अलंकार दीपक हैं। शिवसहायदास की शिवचौपाई और लोकोक्ति रस कौमुदी है। इस युग के अन्य कवियों में रूपसाहि-रूप विलास) 1756(; ऋषिनाथ) अलंकार मणि -177ई(; बैरीसाल) भाषाभरण -1768 ई(., दत्त) लालित्य लता(; रतनकवि)फतेहभूषण ,अलंकार दर्पण(; हरिनाथ) (नाथ)अलंकार दर्पण(; मनीराम मिश्रछंद) छप्पनी(; चंदन)श्रृंगार सागर ,काव्याभरण ,कल्लोलतरंगिणी(; देवकीनंदन) शृंगारचरित्र-1784ई ,अवधूत भूषण-1800ई ,सरफराज चंद्रिकाप्रमुख रचनाकार हैं (। भान कवि का नरेन्द्र भूषण)1788 ई(. और थान कवि (थान राय(का दलेलप्रकाश)1792 ई(. दोनों अलंकारग्रंथ- हैं। बेनी प्रवीन कवि ने नवरस तरंग)1817ई,(शृंगार भूषण, नानाराव प्रकास, नवरस तरंग और बेनी बंदीजन कवि की टिकैतराय प्रकाश)1792ई(रसविलास 1817 ई. उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। जसवंत सिंह द्वितीय की श्रृंगार सम्बन्धी रचना शृंगार शिरोमणि है।

रीतिकाल के अंतिम कवियों में कविवर-पद्माकर ने पद्माभरण में अलंकार ,वर्णन-जगद् विनोद में नवरस – विवेचनप्रबोध पचासा में भक्तिनिरूपण- किया है। गंगालहरी में संस्कृत कवि जगन्नाथ कृत गंगालहरी और रामरसायन में वाल्मीकि के रामायण का छायानुवाद प्राप्त होता है। इसी प्रकार पद्माकर के आश्रयदाताओं का ओजपूर्ण वीरता से सम्बंधित हिम्मत बहादुर विरुदावली)1792 ई(. और प्रताप सिंह विरुदावली)1803-21 ई(. प्रबंध काव्य है। रीतिबद्ध कवियों में यशोदानंद) बरवै नायिका भेद(; करन कवि) साहित्य रस, रस कल्लोल(;

ब्रह्मदत्त) विद्वद्विलास-1803ई,(.दीप प्रकाश-1808ई(.; रसिक गोविंद) रामायण सूचनिका-1801ई,रसिक गोविंदानंदघन ,लछिमन चंद्रिका-1829ई,. अष्टदेशभाषा, पिंगल, समयप्रबंध ,कलियुग रासो -1808ई, रसिक गोविंद -1833ई,युगलरस माधुरी और (लाल कवि) (गोरेलाल पुरोहित)छत्रप्रकाश,) जैसे अनेक प्रसिद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं से रीतिकाल को समृद्ध किया है।

रीतिकाल के सिद्ध कवियों की परम्परा में सर्वप्रमुख और प्रतिनिधि कवि बिहारीलाल का नाम लिया जाता हैसतसई की रचना करके अमर हो गये-जिन्होंने बिहारी ,। इसके अन्य कवियों में सेनापति(कवित्त रत्नाकर) ; रसनिधि) रतन हजारा(; हठीजी) श्रीराधा सुधाशतक-1780(; नृपशंभु ,नख शिख ,नायिका भेद) (शंभुराज) सात शतक(; विक्रमादित्य) विक्रमसतसई) और पजनेश (नखशिख, मधुरप्रिया, प्रजनेश प्रकाशका विशेष नाम (लिया जा सकता है।

रीतिकाल की तीसरी मुख्यधारा में रीतिमुक्त कवियों में घनआनंद) सुजानहित, इश्कलता ,वियोगवेलि, प्रीतिपावस, यमुनायश, वृंदावन सत, प्रेम,पत्रिका- सरसवसंत,आनंदघन पदावली, घनानंद कवित्त ,कृष्णकौमुदी विरहलीला (आलम) माधवानलकामकंदला-1904ई ,आलमकेलि-1903ई. श्यामसनेही-1904ई, सुदामाचरित-1935ई ;(.बोधा (बुद्धिसेन) (विरहवारीश-1894ई ,इश्कनामा-1836 ई ;(.ठाकुर) (ठाकुरदास)ठाकुर ठसक -1826 ई ,ठाकुर शतक -1804 ई (.और द्विजदेव (शृंगारलतिका, शृंगारबत्तीसी(जैसे कवियों का विशेष योगदान है।

बोध प्रश्न

10. रीतिबद्ध कवियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

11. रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त कवियों में अंतर स्पष्ट करते हुए संक्षिप्त परिचय लिखिए।

12 . रसराज किसकी रचना है-

भिखारीदास (क)
(ख) मतिराम
चिंतामणि (ग)
(घ) जसवंत सिंह

4. 7रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ

रीतिकालीन साहित्य की रचनाधार्मिता के बारे में यह सहज ही अनुमानित होता है कि राज्याश्रित साहित्य राजाओं की आशाओं ,अभिलाषाओं, राजकीय व्यवस्था की अभिरुचियों और राजमहलों की अलंकृत जीवनाभिलाषों की गति में उफनता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि साहित्य में प्रेम और श्रृंगार वासना और सौन्दर्य के अभिव्यंजन का प्राबल्य बढ़ा और साथ ही रीतिनि-रूपण, नायिकाभेद-, सौन्दर्यसंयोजन के प्रति -

च-कवियों का रुझान भी अधिक रहा। इस प्रकार रीतिकालीन साहित्य जनेतना से विमुख आत्मप्र-दर्शन का काव्य रहा है। जिसमें अधोलिखित प्रवृत्तियां झलकती हैं -

4.7. 1रीतिनिरूपण-

हिंदी के रीतिकालीन काव्य में 'रीतिनि-रूपण' की सर्वाधिक अभिव्यक्त प्रवृत्ति रही है। इसके अनन्तर कवियों ने अपनी रचनाधर्मिता को विविधता का सोपान दिया है। रीतिनिरूपण के व्यापक विश्लेषण के - फलस्वरूपइसे तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। प्रथमतः उन ग्रन्थों की परिगणना की जाती रही है जिसका उद्देश्य काव्यांग-कवि इसमें अपने कवित्व -विषयक परिचय उपलब्ध कराना होता है-शक्ति का प्रदर्शन नहीं करते। इस सन्दर्भ में दूसरी प्रवृत्ति के अनन्तर रीति कर्म एवं कविकर्म की समान महत्ता के लिए ग्रन्थों का प्रणयन किया गया है, जिसमें लक्षण और उदाहरण दोनों ही स्वरचित होते हैं। तीसरे वर्ग में ऐसे ग्रन्थों की बहुलता है जो प्रायः लक्षणमुक्त होते हैं।

इस प्रकार रीतिनि-रूपण के अन्तर्गत रीतिकालीन कवियों को दो ऐसे वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जिन्होंने काव्यांग अभिव्यंजन में या तो सर्वांग विवेचन यथा- काव्यलक्षण-, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्यभेद-, शब्दशक्ति-, काव्य की आत्मा, काव्यगुण-, काव्यदोष-, काव्यरीति-, अलंकार और छन्दादि का निर्वाह किया है अथवा विशिष्टांगविवेचन रस-, अलंकार अथवा छन्दादि की परम्परा का निर्वाह किया है। सर्वांग- ,(कविकुलकल्पतरु) विवेचन से सम्बद्ध ग्रन्थों में चिन्तामणि देव ,(शब्दरसायन)भिखारीदास ,(काव्यनिर्णय) और कुलपति -प्रमुख है जबकि विशिष्टांग (रसरहस्य)विवेचन के अनन्तर- चिन्तामणि (रसविलास), पद्माकर जग)द्विनोद,(मतिराम एवं देव (रसराज) कवि (रसविलास श्रेष्ठ माने जाते (हैं। इस प्रकार रीतिनि-रूपण में रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रचलित शैलियों से प्रभाव ग्रहण कर इन ग्रन्थों की रचना द्वारा सामान्यजनों को काव्यशास्त्रीय ज्ञान की प्राप्ति दिलाई।

4.7. 2श्रृंगारिकता

रीतिकालीन काव्य की दूसरी प्रमुख प्रकृति श्रृंगारिकता की रही है। यद्यपि सामन्ती व्यवस्था की मांग, नैतिक शिक्षा के अभाव और विलासी जीवन-पद्धति ने इनके श्रृंगार को मांसलता ही प्रदान किया है। तथापि काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुरूप श्रृंगार रस के स्वरूप, नायकनायिका भेद-, नख वर्णन आदि के स्वरूप-शिख-को स्पष्ट करने के लिए भी श्रृंगारिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता रहा है। श्रृंगार रस के विभाव ,अनुभाव, संचारी-भाव, नायिकाओं के हावभाव-, कामदशाओं आदि के निरूपण में श्रृंगारिकता स्वतः प्रस्फुटित होती है।-

"बैठि अटा, कच ब्यौरे घटा, घन बिज्जू छटा जु समानक सी,
पियपीछे तरीछे चितै मनो है हरि काम कमान करनी।"

)कालिदास हजारा(

रीतिकाव्य परम्परा मे श्रृंगारवर्णन के अनन्तर कल्पनाप्रियता-, विलास प्रधानता, कुण्ठारहित प्रेम उन्मुक्तता, रसिकता, ऐन्द्रियबोधिता, शरीर सुखकाम बहुलता का आधिक्य ही मिलता है। इस प्रकार आलोच्य --काल में कवियों में संयोग के नग्नचित्र प्रस्तुत करने में, विलासी जीवन के उपकरण संग्रह में नायक की धृष्टता परिगणित करने में और गार्हस्थिक-प्रेम की उन्मुक्तता दर्शाने में सीमा से बढ़कर रुचि ली है। यही कारण है कि इन कवियों की दृष्टि वासना के उन्नयन या प्रेम के अतीन्द्रिय रूप की ओर नहीं पड़ती। नारी शरीर की बनावट उसके उतारचढ़ाव-, काम चेष्टा एवं काम की अतृप्ति से उत्पन्न मानसिक तरंगों को पढ़ने में ही इन कवियों की उभिव्यक्ति उलझी रही है। यही कारण है कि इनका श्रृंगार एकांगी रहा है। इस सन्दर्भ में इतना कहना ही प्रर्याप्त होगा कि भक्तिकालीन धर्मरक्षकश्री-कृष्ण और लोकसेविका-राधा के प्रसंग में भी इन कवियों ने श्रृंगार के स्थूल मांसल एवं कामोत्तेजक वर्णन किए हैं तो स्वाभाविक है कि राजकन्याओं, रानियों, कामिनियों और वेश्याओं के रूप वर्णन में इनकी कल्पना को स्वतंत्रता की कितनी असीमित दौड़ उपलब्ध रही होगी।

4. 7. 3प्रशस्तिगान एवं वीरता

रीतिकालीन समाज सामन्ती व्यवस्था पर आधारित एक ऐसा उच्छृंखल समाज था जिसमें जनसामान्य --सुख उसकी इच्छा-के दुःख अनिच्छा से सर्वथा विमुख राजकीय आदेशों का अनुशासन था। राज्याश्रित कवियों में जीविकोपार्जन की चिन्तना अधिक थी और जनचेतना की चिन्ता कम। यही कारण है कि आश्रयदाताओं की -दानवीरता, युद्धवीरता, विलासिता, मदान्धता एवं पराक्रम की झूठी कहानियों के अभिव्यंजन द्वारा ही इन कवियों ने अर्थोपार्जन भी किया और साहित्य,सर्जन भी। जो कवि राज्याश्रित न थे- उनकी साहित्यिक साधना को इसलिए भी महत्ता नहीं मिली, क्योंकि समाज सामन्ती था। इस प्रकार इन कवियों ने अपनेअपने -आश्रयदाताओं के प्रशस्तिगान में अतिरंजना का सहारा लिया है जो राजाओं में लोकमान्य गुणों के आरोपण, धनअवरोहण में प्रदर्शित हुआ है। इस सन्दर्भ में -राशि विफलता के प्रदर्शन एवं राजकीय रीति के आरोहण-,केशव चिन्तामणि, देव, भिखारीदास, मतिराम, पद्माकर, भूषण जैसे आचार्यों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्तियां लिखी और तदनुरूप अर्थ एवं प्रतिष्ठा पाई।

4.7. 4भक्तिभावना-

रीतिकालीन काव्य में भक्ति भावना का निर्वाह भक्तिकाल की परम्परा के रूप में ही अधिक हुआ है। भक्ति की इस अभिव्यक्ति का निर्वाह इन कवियों ने रीतिग्रन्थों के मंगलाचरणों, उसकी परिसमाप्ति के उपरान्त आशीर्वचनों, भक्ति एवं शान्ति के भावविवेचन सम्बन्धी ग्रन्थों में किया है। वास्तव में -प्रदर्शनों एवं अलंकार- रीतिकालीन भक्ति पदों में गुम्फित धार्मिकता के पीछे विलासी जीवन कीमुमूर्षा से पलायन की प्रवृत्ति ही केन्द्रित है। विषयवासना की मांसलता से थके हुए मन को जब भी मानसिक बदल-ाव की आवश्यकता हुई।

भक्ति की शक्ति ने ही उन्हें कुंठा से उबारा है। केशव, देव, बिहारी, पद्माकर आदि की कृतियों में भक्ति की अभिव्यक्ति यत्रतत्र संजोयी गई है।-

"केसव काम के राम बिसारत और निकाम रे काम न रहें।
चेति रे चेति अजो चित अन्तर अन्तक लोक अकेले ही जैहे।")केशवदास(

4.7. 5नीतिपरकता

रीतिकालीन समाज वासना के पंकिल गर्त में डूबा हुआ मानसिक विकलांगता की ओर उन्मुख था। राजदरबारों, क्रीड़ाघरों, वेश्यालयों और राजप्रासादों में कैद कविता जीवन की निराशा पर दम तोड़ रही थी। राज्याश्रित कवियों ने यद्यपि, अपनी राजभक्ति की बलि-वेदी पर चेतना की आहुति दे डाली थी, तथापि उनके अन्तर का आलोक जबतब चेतस् होता था- तो भक्ति और नीति के पद स्वतः स्फूर्त होते थे। भक्ति वासना के उन्नयन का मार्ग बनकर उफन आई थी तो नीति सामन्ती व्यवस्था की खोखली मानसिकता का उदात्ती कृत छवि बनकर। यही कारण है कि रीतिकालीन कवियों में नीतिपरकता आत्मोपदेश का उद्गार बनकर अभिव्यक्ति पाती रही है। नीति की उपदेशात्मकता जनसामान्य की कुण्ठाग्रस्त मानसिकता को आध्यात्मिक सम्बल दे सकी है- इसमें सन्देह नहीं। यद्यपि रीतिकालीन काव्य में श्रृंगारिकता का जितना अधिक्य है नीतिपरकता उतनी ही न्यून दिखाई देती है।

4.7. 6प्रकृतिचित्रण-

प्रकृति और कवि पूरक है। परम्परा गृहीत प्रकृति कवियों की अन्तः प्रेरणा भी रही है और बाह्य प्रेरणा भी। रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति को आलम्बन रूप में ग्रहण न करके ऐसे रूपों में गृहीत किया है जो नायक-नायिका के मन में रतिभाव की जागृति भर सके या विरहाग्नि की तीव्रता ला सके। यही कारण है कि रीतिकाव्य ' परम्परा मेंषड्ऋतु' एवं 'बहरमासा' शीर्षक के द्वारा स्वतंत्र काव्यों की रचना हुई। इसी के अनुरूप काव्य-शास्त्र ग्रन्थों में भी नायकनायिका के मध्य- श्रृंगार रस की निष्पति हेतु मुख्य रूप से उद्दीपन भावों की अभिव्यक्ति में प्रकृति-चित्रण ग्राह्य हुआ है। उदाहरण के लिए देव की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य है-

"कुंज मै ह्वै गई सांझ दुहूं को चलै चरचा रस की बतियां की,
देव घटा जल बूंद लगी बरसावन सावन की रतियां की।
प्यारी के अंक निसंक ह्वै सोए पिया तऊ देह डुली न तिया की।
चंपक बेली सी बांहनि सौ रही नाह पै छांह करें छतिया की।")देव(

4.7. 7अनुवाद की प्रवृत्ति

रीतिकाल में प्रायः संस्कृत काव्यशास्त्र के रूपान्तरण व अनुवाद की प्रवृत्ति बलवती रही है। प्रायः सभी कवियों ने काव्यगंभीर परम्परा का निर्वाह हिन्दी साहित्य में -शास्त्रीय विषयों पर रचना करके संस्कृत की गुरु-

भी प्रवाहित रखा। सामान्यतः कवियों ने आचार्य मम्मट रचित "काव्यप्रका-श" एवं आचार्य विश्वनाथ रचित के आधार पर हिन्दी में काव्यशास्त्र का प्रणयन शु "साहित्य दर्पण"रू हुआ जिसके द्वारा जनसामान्य को शास्त्रीय - ज्ञान दिलाया जा सके।आचार्य केशव (कविप्रिया), आचार्य चिन्तामणि (कविकल्पतरू), आचार्य देव शब्द) (रसायन, आचार्य भिखारीदास आदि (काव्यनिर्णय)ग्रंथ इसी प्रकार की कृतियां हैं। इन ग्रन्थों में प्रकारान्तर रूप से काव्य की परिभाषा, काव्य प्रयोजन, शब्दशक्ति-, काव्यगुण-, काव्यदोष-, रीति, ध्वनि, गायकनायिका भेद - और अलंकारादि के स्वरूप को समझाया गया है।

4.7. 8भाषागत वैशिष्ट्य

रीतिकालीन शासकीय व्यवस्था में फारसी राजभाषा थी और ब्रजभाषा जनभाषा के रूप में प्रसिद्ध थी। प्रायः कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा से प्रभाव ग्रहण करके बजभाषा को अधिक महत्ता दी। वास्तव - ;में अतिरंजना एवं आलंकारिक प्रयोगों के प्रभाव से भाषा में कोमलता, सरसता, सुगमता एवं सुबोधता का प्राधान्य देखने को मिलता है। काव्यशास्त्र की सूक्ष्म संवेदनायें हो या अनुभव की गहरी अभिव्यक्ति, सौन्दर्य निरूपण में बिम्बों का उतारचढ़ाव हो या दर्शन एवं अध्यात्म की कठोर शब्दावली-, राजभाषा की उपयुक्तता रीतिकालीन काव्य की आत्मा है।

इस प्रकार उपरोक्त प्रवृत्तियों के अनुशीलन से यह ध्यातव्य है कि रीतिकालीन काव्य वासना के पंकिल गर्त में उलझा हुआ एक ऐसा काव्य है जिसमें जीवन के सुन्दर का सर्वथा अभाव है। मर्यादित सांस्कृतिक तत्वों की ह्रासोन्मुख गतिजता में सामाजिक अव्यवस्था के प्रतिफलन का दस्तावेज बनकर रीतिकालीन काव्य हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। यद्यपि इन तमाम विंगतियों के बावजूद रीतिकालीन काव्य में शास्त्रीय ज्ञान की गम्भीरता है, प्रेम की गार्हस्थिक सहजता है और सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य से भिन्न साहित्यिक सरसता है। कुल मिलाकर यह कहना सार्थक होगा कि रीतिकाल हिन्दी साहित्य के दीर्घजीवी विकासपथ का एक ऐसा पड़ाव है जिसमें हमें जीवन की उदात्त परिभाषा तक पहुंच पाने का एक गुम्फित संकल्प मिलता है।

बोध प्रश्न

12. रीतिकाल की विभिन्न प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
13. सिद्ध कीजिए कि रीतिकाल में भक्तिकालीन प्रवृत्ति की धारा नहीं सूखी थी।
14. हिंदी के रीतिकालीन काव्य में सर्वाधिक अभिव्यक्त प्रवृत्ति रही है-

नीतिपरकता (क)
प्रकृति चित्रण (ख)
(ग)रीतिनि-रूपण
अनुवाद की प्रवृत्ति (घ)

बोध प्रश्न

रीतिकालीन भाषा की साहित्यिकता का विवेचन कीजिए 15 ।

उत्तरदेखि -ए- 4.8

14 तुलसी गंग दुओ भए सुकविन के सरदार किसकी उक्ति है-

केशवदास (क)

(ख) बिहारी

पद्माकर (ग)

(घभिखारीदास (

उत्तर- (घ) भिखारीदास

4.सारांश 9

इस इकाई के अंतर्गत हिंदी साहित्य की रीतिकालीन कविता जिन विभिन्न परिस्थितियों के बीच उत्पन्न हुई तथा उसका विस्तार किनइसमें उनका विशद वर्णन किया गया है ,किन धाराओं के बीच हुआ-। रीतिकाल की विभिन्न धाराओं - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त कविता की आंतरिक विशेषतायें भी इस इकाई में विवेचित किया गया है। रीतिकाल में शृंगारिक रचनाओं के साथसाथ शृंगारेतर साहित्य की भी रचना हो रही - थी और वीरता, धर्म, नीति और वैराग्य पर भी कविताएँ लिखी जा रही थीं, जिनका इस युग में विशेष महत्व है। इसका सम्यक विवेचन इस इकाई के अंतर्गत किया गया है।

4. 10 कठिन शब्द

परिगणित- जिसका उल्लेख हो चुका हो।

वैमनस्यतादुश्मनी ,वैर -

शाने-शौकत खुशहाली ,आराम -

पतनोन्मुख- पतन की ओर जानेवाला

जीविकोपार्जन- रोज़ी कमाने की प्रक्रिया

अभिहित उल्लिखित ,कहा हुआ -

रहस्योद्घाटन छिपी हुई बात का प्रकट होना -

राजप्रासाद राजमहल -

प्रणयन -रचना लेखन

सुघड़ता कुशलता या मनोहरता -

4. 11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. बच्चन सिंह,)2008(, बिहारी का नया मूल्यांकन, लोकभारती प्रकाशनइलाहाबाद ,
2. बच्चन, सिंह, रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, नागरी प्रचारिणी सभा काशी ,
3. बालकिशन शर्मा,)2007(, पद्माकर-काव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन, आकाश प्रकाशनगाजियाबाद ,
4. रामचंद्र शुक्ल,)2010(, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थाननयी दिल्ली ,
5. रामस्वरूप चतुर्वेदी,) 2007(, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशनइलाहाबाद ,
6. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,) 2000(, बिहारी, संजय बुक सेंटरवाराणसी ,
7. सुधींद्र कुमार,)2002(, रीतिकाव्य की इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशननयी दिल्ली ,
8. शशिप्रभा प्रसाद,)2007(, रीतिकालीन भारतीय समाज, लोकभारती प्रकाशनइलाहाबाद ,
9. सुधीर शर्मा,)1998(, कविवर वृन्दक्तित्वव्य : एवं कृतित्वदिल्ली ,राज प्रकाशनस्व,
10. रमा नवले,)2010(, भूषण का प्रशस्ति काव्य, विकास प्रकाशनकानपुर ,
11. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,)2006(, हिंदी साहित्य का अतीत, वाणी प्रकाशननयी दिल्ली ,
12. भगीरथ मिश्र,) 1999(, हिंदी रीति साहित्य, राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली
13. गणपतिचंद्र गुप्त,)2007(, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशनइलाहाबाद ,
14. डॉ. रामकुमार वर्मा,)2007(, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद
15. डॉ) सविता .2013(, बोधाकृत्त 'इश्कनामा' में रीतितत्त्व-, कमला प्रकाशन गाजियाबाद ,
16. प्रभाकर सिंह,) (सं) 2016(, रीतिकाव्य मूल्यांकन के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशनइलाहाबाद ,
17. डॉ) नगेंद्र .2000(, रीतिकाव्य की भूमिकानोएडा ,मयूर पेपर बैक्स ,
18. डॉरामकुमार शर्मा .,) 1992(, देव और पद्माकर तुलनात्मक अध्ययन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली
19. रामविलास शर्मा,) 2002(, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशननई दिल्ली ,
20. जगन्नाथदास रत्नाकर ,(2010), बिहारी रत्नाकर, प्रकाशन संस्थाननयी दिल्ली ,

4.1.बोध प्रश्नों के उत्तर 2

1 . रीतिकाल की पृष्ठभूमि नातिदीर्घ निबंध लिखिए डालिए।

उत्तरदेखिए -- इकाई 4: 3

2. सिद्ध कीजिए कि रीतिकाल में साहित्यसंगीत और कला का एक साथ विकास हुआ ,।

उत्तरदेखिए -- इकाई 4: 3

3 . हिंदी साहित्येतिहास में रीतिकाल का कालखंड कब से कब तक माना जाता है ?

(क)सन् .ई 1343 से सन् 1043

(ख)सन् .ई 1643 से सन् 1343

(ग)सन् .ई 1843 से सन् 1643

(घ)सन् .ई 1943 से सन् 1843

उत्तर (ग) -सन् .ई 1843 से सन् 1643

4. रीतिकाल और रीतिकाव्य से आप क्या समझते हैं ?

उत्तर– देखिए - इकाई 4: 4

5. शब्द का अर्थ "रीति" नहीं है -

(क) रिक्त

(ख) प्रणाली

(ग)परम्परा

(घ)पद्धति

उत्तर (क) -रिक्त

6. अपनी अपनी रीति के काव्य और कवि-रीतिकिसकी उक्ति है --

भिखारीदास (क)

देव (ख)

चिंतामणि (ग)

(घ) दूलह

उत्तर (ख) - देव

7. रीतिकाल की तीन धाराओं का सामान्य परिचय दीजिए ।

उत्तरदेखिए -- इकाई 4: 5

8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उत्तर मध्य काल को क्या नाम दिया है-

अलंकृत काल (क)

(ख) शैशव काल

रीतिकाल (ग)

कलाकाल (घ)

उत्तर रीतिकाल (ग) -

9. भाषाभूषण ग्रन्थ को जो देखै चित लावकिसकी उक्ति है --

भिखारीदास (क)

(ख) देव

चिंतामणि (ग)

जसवंत सिंह (घ)

उत्तर- (घ) जसवंत सिंह

10. रीतिबद्ध कवियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तरदेखिए -- इकाई 4: 6

11. रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त कवियों में अंतर स्पष्ट करते हुए संक्षिप्त परिचय लिखिए।

उत्तरदेखिए -- इकाई 4 : 6

12 . रसराज किसकी रचना है-

भिखारीदास (क)

मतिराम (ख)

(ग)चिंतामणि

जसवंत सिंह (घ)

उत्तरमतिराम (ख) -

13. रीतिकाल की विभिन्न प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तरदेखिए -- इकाई 4: 7

14. सिद्ध कीजिए कि रीतिकाल में भक्तिकालीन प्रवृत्ति की धारा नहीं सूखी थी।

उत्तरदेखिए -- इकाई 4: 7

15. हिंदी के रीतिकालीन काव्य में सर्वाधिक अभिव्यक्त प्रवृत्ति रही है-

नीतिपरकता (क)

(ख) प्रकृति चित्रण

(ग)रीतिनि-रूपण

(घ) अनुवाद की प्रवृत्ति

उत्तर (ग) -रीतिनि-रूपण

4.1. अभ्यास प्रश्न 3

16. रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालिए।

17. रीतिकालीन शृंगारेतर काव्य प्रवृत्तियों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

18. रीतिकालीन रीतिबद्ध काव्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

19. रीतिकालीन रीतिबद्ध काव्य धारा के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।

20. रीतिकालीन रीतिसिद्ध काव्य धारा की विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

21. रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों का उल्लेख कीजिए।

22. बिहारी-सतसई में रीतिकालीन विशेषताओं के प्रतिफलन का विवेचन कीजिए।

23. रीतिकालीन भक्ति भावना के स्वरूप-पर प्रकाश डालिए।

24. रीतिकालीन नीतिकाव्य की विशेषताओं का परिचय दीजिए।

25. रीतिकालीन कवियों की भाषाशैली- की विवेचना कीजिए।